...ग

...र संरक्षण तथा प्रसार ।
...त विवेचन ।
...ा अनुसंधान ।
...न और कला का पर्यालोचन ।

सूचना

"सब श्रेणी के सभासदों को उनके सभासद होने के वर्षारंभ से सभा की मुखपत्रिका बिना मूल्य दी जायगी। वे सभासद पत्रिका के पुराने अंक और सभा द्वारा प्रकाशित अन्य पत्रिका तथा पुस्तकों की एक एक प्रति ३/४ मूल्य पर ले सकते हैं। परंतु प्रबंधसमिति को अधिकार होगा कि साधारण सभा की अनुमति से किसी विशेष पुस्तक को इस नियम के बाहर रखे।"

(ना० प्र० सभा का नियम सं० ११)

नागरीप्रचारिणी पत्रिका

वर्ष ४६-अंक ३ [नवीन संस्करण] कार्त्तिक १९९८

वीरगाथा-काल का जैन भाषा-साहित्य

[लेखक—श्री अगरचंद नाहटा]

हिंदी-साहित्य के इतिहासकारों ने सं० १०५० से १४०० तक के साहित्य के काल को वीरगाथा-काल के नाम से संबोधित किया है; पर वास्तव में उस समय की कही जानेवाली एक भी रचना में उस समय की भाषा सुरक्षित नहीं है। अत: भाषा के क्रमिक विकास के अध्ययन की दृष्टि से वे ग्रंथ सर्वथा अनुपयोगी हैं। अतएव ऐसे साहित्य की खोज नितांत आवश्यक है जो उस समय की भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन करने के लिये उपयोगी हो अर्थात् जिस साहित्य के द्वारा हम भाषा के क्रमिक विकास का भली भाँति पता लगा सकें। मेरे विचार से इस कार्य के लिये उस समय के जैन साहित्य का अध्ययन ही नितांत आवश्यक एवं उपयोगी है; क्योंकि तत्कालीन जैन रचनाएँ प्रचुर परिमाण में उपलब्ध हैं एवं उनकी प्राचीन प्रतियाँ भी उपलब्ध हैं। अतः उनमें भाषा भी मूल रूप में सुरक्षित पाई जाती है। इस लेख में अद्यावधि ज्ञात तत्कालीन जैन रचनाओं का संक्षिप्त

परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है। आशा है, हिंदी-साहित्यसेवी विद्वद्गण उनका विशेष अध्ययन करके वीरगाथा-काल की भाषा के वास्तविक स्वरूप पर समुचित विचार करेंगे।

ग्यारहवीं शताब्दी*

१—धनपाल—धारा के राजा भोज के सभापंडित, सत्यपुरीय महावीर उत्साह, रचना संवत् लगभग १०८१, गा० १५—

आदि :—जिणव जेण दुट्टु कम्म बलवंता मोडिय।
चउकसाय पसरंत जेण उम्मूल वितोडिय॥
तिहुयण जगडण मयण सरलितणु जासु न भिज्जइ।
इयर नरहि सचउरि वीरु, सो किम जगडिज्जइ॥ १॥

× × × ×

अंत :—रक्खि सामि पसरंतु मोहु नेहुंडुय तोडहि।
सम्मदंसणि नाणु चरणु भडु कोहु विहाडहि॥
करि पसाउ सचउरि वीरु जइ तुह मणि भावइ।
तइ तुट्टइ धणपालु जाउ जहि गयउ न आवइ॥ १५॥

(प्र० जैन साहित्य संशोधक, खं० ३, अं० ३)

बारहवीं शताब्दी

१—जिनवल्लभसूरि—खरतरगच्छ अभयदेवसूरिपट्टधर, सं० ११६७, नवकार फल-माहात्म्य, गा० १३ षट्पद छंद—

आदि :—किं कप्पतरु रे अयाण चिंतहि मन भिंचरि।
किं चिंतामणि कामधेनु आराहहि बहु परि॥
चित्रावेलिहि काजु किसउ, देसंतरु लंघइ।
रमणि रासि कारणह किसउ सायर उल्लंघइ॥
चउदह पूरव सारु जगे लद्धु एहु नवकारु।
सयल काज महियलि सरहिं दुत्तरि तरि संसारु॥ १॥

(हमारे प्र० अभयरत्नसार आदि ग्रंथों में प्रकाशित)

---

* श्वे० जैन विद्वानों के समग्र भाषा-साहित्य के लिये जैन गुर्जर कविओ, भा० १-२-३ देखने चाहिएँ।

२—पल्ह—खरतर जिनदत्तसूरि-भक्त सं० ११७०, जिन-चंद्रसूरिस्तुति, गा० १० षट्पद छंद—

आदिः—जिण दिट्ठइं आणंदु चडइ, ऊइ रहसु चउग्गुणु।
जिण दिट्ठइं झड हडइ पाउतणु निम्मल हुइ पुणु॥
जिण दिट्ठइ सुहु होइ, कट्ठु पुव्वुक्किउ नासइ।
जिण दिट्ठइ हुइ सुइ धम्ममइ, ऊबुहइ काइ उट्ठलइ॥
पहु नव फणि मंडिउ पास जिणु, अजयमेरि किन पिक्खहु॥ १॥

(सं० ११७०-७१ लि० प्रति के आधार से हमारे ऐ० जै० का० सं० में प्रकाशित)

३—वादिदेवसूरि—मुनिचंद्रसूरि-शि०, सं० ११८४, आचार्यपद मुनिचंद्र गुरुस्तुति, गा० २५—-

आदिः—नाणु चरणु संमतु जसु रयणत्तउ सुपहाणु।
जयओ सुमुणिसुरि इत्थुजगि मोडिअ मम्मह खाणु॥
उवसम रयण समुद्द समु विहलिय जामहाऽऽसार (साहार ?)।
वंदओ मुणिसूरि भवियजण जिम छुंदउ संसार। २॥

(गुजराती अनुवाद सह प्र० जैनश्वे-कौ० हेरल्ड पु० ११ अं० ९)

तेरहवीं शताब्दी

१—शालिभद्रसूरि—राजगच्छीय वज्रसेनसूरि-शिष्य, सं० १२४१—

(क) भरतेश्वर बाहुबलिरास, गा० २०५, सं० १२४१ फाल्गुन पंचमी—

आदिः—रिसह जिणेसरपय पणमेवी, सरसति सामिणि मनि समरेवी।
नमवि निरंतर गुरु चरणा।
भरह नरिंदह तणउ चरित्तो, जे जगि वसुहीडइ वदीतो।
वार वरसि बिहुं बंधवहं॥ १॥
हउ हिव ए भणिसु रासह छुंदिहि, तं जणमणहर मण आणंदिहि।
भाविहं भवीयण सांभणउ।
जंबूदीवि उवारा उर नयरो, धणकण कंचण रयणिहिं पवरो।
अवर पवर किहि अमरपुरो॥ २॥

(प्रति—विजयधर्मसूरि भंडार, बड़ौदा सैंट्रल लायब्रेरी, प्र० कांतिविजय, ०गा० २४०)

(ख) बुद्धिरास, गा० ५३ (किसी प्रति में ६२ भी है)—

आदि :—पणमवि देवि अंबाइ, पंचाणण गामिणि वरदाइ।
जिण सासणि सानिध करइ सामिणी, सुरसामिणी तुं सदा सोहागिणी ॥ १ ॥
पणमिय गणहर गोयमसामि दुरिय पणासइ तेहनइ नामि
वर्द्धमान सामीनउ सीस, प्रणम्यां पूरइ सयल जगीस ॥ २ ॥
(प्रति हमारे संग्रह में. सं० १४८३; और भी अनेक प्रतियाँ उपलब्ध हैं)

२—आसगु—शांतिसूरि-शि० श्रावक, जीवदया रासु, गा० ५३, सं० १२५७ आ० शु० ७—

आदि :— दुरि सरसति आसिगु भणइ, नवउ एहु जीवदया सारु।
केनु धरिवि निसुणउ जण दुत्तरु जेम तरहु ससारु ॥ १ ॥
(हमारे संग्रह की सं० १४९३ लिखित प्रति में)

३—नेमिचंद्र भंडारी—खरतर जिनेश्वरसूरि के पिता,
जिनवल्लभसूरि गुणवर्णन, गा० ३५, सं० १२५६ के लगभग—

आदि :—पणमवि सामि वीर जिणु, गणहर गोयम सामि।
सुधरम सामिय तुलनि सरणु, जुग प्रधान सिवगामि ॥ १ ॥
तित्थुद्धरणु स मुणिरयण, जुगप्रधानु कमि पत्तु।
जिणवल्लह सूरि जुगपवर जसु निम्मलउ चरित्तु ॥ २ ॥
(हमारे संपादित ऐ० जै० का० संग्रह के पृ० ३६९ से ७२ में प्रका०)

४—धर्म—महेंद्रसूरि-शिष्य—

(क) जंबूस्वामीचरित सं० १२६६, गा० ५२ (किसी प्रति में ४१ भी है)—

आदि :—जिण चउवीसइ पयनमेवि गुरुचलण नमेवी।
जंबु सामिहिं तणउ चरिय भविउं निसुणेवि।
करि सानिध सरसतीदेवि जिम रयं कहाणउ।
जंबू सामिहिं गुण गहण संखेवि वखाणउ ॥ १ ॥
(प्रति—बीकानेर बृहद् ज्ञानभंडार, १५वीं के पूर्वार्द्ध में लि०)

(ख) स्थूलिभद्ररास, गा० ४७—

आदि :—पणमवि सासणदेवी अनइं वाएसरी,

थूलिभद्र गुणगहण, सुणि सुणिय रहस्तु केसरि ॥ १ ॥

(प्रति हमारे संग्रह में)

(ग) सुभद्रासती चतुष्पदिका, गा० ४२—

आदि :—जं फलु होइ गया गिरथारे, जं फलु दीन्हइ सोना भारे।

जं फलु लक्खि नवकारिहि गुणिहिं तं फल सुभद्राचरितिहि सुणिहिं ॥ १ ॥

(प्रति हमारे संग्रह में)

५—विजयसेनसूरि—नागेंद्रगच्छीय हरिभद्रसूरि-शि० मंत्रीश्वर वस्तुपाल के धर्माचार्य रेवंतगिरिरासो, गा० ७२, सं० १२८८ के लगभग—

आदि :—परमेसर तित्थेसरह, पय पंकय पणमेवि।

भणिसु रासु रेवंतगिरे, अंबिक देवी सुमरेवि।

गामागर पुर वण गहण सरिसरवरि सुपएसु॥

देवभूमि दिसि पच्छिमह मणहरु सोरठ देसु॥२॥

(बड़ौदा-गायकवाड़ ओ०सीरीज से प्र० प्राचीन गुर्जर काव्यसंग्रह में)

६—राम (?)—आबूरास, गा० ५४ सं० १२८९ वसंत—

आदि :—पणमेविणु सामिणि वाएसरी अभिनयु कवितु रयं परमेसरि।

नंदीवरधनु जासु निवासो, पभणउ नेमि जिणंदह रासो।

× × × ×

अंत :—बार संवछरि नवमासीए वसंत मासु रंभाउलु दीहे।

एह रासु बिसतरिहिं जाए रासइ सयल संघ अंबाए ॥ ५४ ॥

(हमारे संपादित राजस्थानी त्रैमासिक वर्ष ३ अं० १ में प्रका०)

७-८—शाहरयण एवं भत्तउ—खरतर जिनपतिसूरिभक्त

(क) (ख) जिनपतिसूरि धवलगीत, गा० २०, सं० १२७८ के लगभग रचित—

आदि :—वीरजिणेसर नमइ सुरेसर तसपह पणमिय पय कमले।

युगवर जिनपति सूरि गुण गाइ सो भत्ति भर हरसि हिमनिरमले ॥ १ ॥

(हमारे संपादित ऐ० जै० का० सं० में प्रकाशित, दोनों रचनाएँ प्रायः एक समान हैं।)

चौदहवीं शताब्दी

१—जिनेश्वर सूरि—खरतर जिनपतिसूरि-शि० (सं० १२७८ और सं० १३३१ के मध्य में रचित), चाचरी गा० ३०—

आदि:—भगति करवि बहु रिसह जिण, वीरह चलण नमेवि।
इउं चालिउ मणि भाव धरि, दुहणि जिणमणि समरेवि॥ १॥

× × × ×

अंत:—गावि नयरि पुरि जिण, भमणि, जे चावरि पभणंति।
वयणि जिणेसरसूरि गुरु ते सिव सुहु पावंति॥ ३॥

(हमारे संग्रह की सं० १४६३ लिखित प्रति में)

२—अभयतिलक—ख० जिनेश्वरसूरिशिष्य, महावीररास, गा० २१, सं० १३०७ वै० सु० १०—

आदि:—पासनाह जिणदत्त गुरो अनु, पाय पउम पणमेवि।
पभणिसु वीरह रासु लउ उतु, संभलहु भविय मिलेवि॥ १॥

× × × ×

अंत:—अभयतिलक गणि पासि, खेलहि मिलवि कराविउ।
इय नियमणि उल्हासि, रासुलउ भवियण दियहुँ॥ २१॥

(हमारे संग्रह की सं० १४६३ में लिखित प्रति में, गुजराती छाया सह जैनयुग पु० २ पृ० १४७ में प्र०)

३—लक्ष्मीतिलक—शांतिनाथदेवरास, गा० ६०—

आदि:—शांतिजिणेसर चरणकमलु।

(प्रति हमारे संग्रह में सं० १४८३ लिखित)

४—सोममूर्त्ति—जिनेश्वरसूरि संयम श्री विवाह वर्णनरास, गा० ३३—

आदि:—चिंतामणि मण चिंतियत्थे, सुहियइ धरेविणु पास जिणु।
जुगपवर जिणेसर मुणिराउ, थुणिसु इउं भति आपणउ गुरु॥ १॥

(हमारे संपादित ऐ० जै० का० सं० पृ० ३७७ में प्रकाशित)

—विनयचंद्रसूरि—रत्नसिंहसूरि-शि०—

(क) नेमिनाथचतुष्पदिका, गा० ४०, सं० १३२५ के लगभग—

आदि:—सोहगसुंदर घण लावन्नु, सुमरवि सामिउ सामलवन्नु।

राखिपति राजल चडि उत्तरिय, बार मास सुणि जिम वन्नरिय ॥ १ ॥

नेमि कुमरु सुमरवि गिरनारि, सिद्धी राजल कन्नकुमारि ॥आ०॥

(ख) उपदेशमाला कथानक छप्पय गा० ८१ षट्पद छंद (रत्नसिंह-सूरिशि० कृत, विनयचंद्र नाम अनिश्चित)

आदि :—विजय नरिंद जिणिंद वीर हत्थिहिं वयलेविणु।

धम्मदास गणि नामि गामि नयरिहिं विहाइ पय ॥

(प्र० प्राचीन गुर्जर काव्य संग्रह)

(ग) बारव्रत रास, सं० १३३८, गा० ५३, प्र० जैनयुग पु० ५ पृ० ४४०—

(घ) नेमिनाथ चतुष्पदिका (सं० १३५३ लि० प्रति) प्र० जैन श्वे० का० हेरल्ड पु० ९ अंक ८-९।

(ङ) आनंदसंधि गा० १७५—

अंत :—सिरि रयणसिंह सूरि गुरुवयसि, सिरि विणयचंद तसु सीसलेसि।

उज्झयणु पढमु एह सत्तमंगि, उद्धरिउ संधिबंधेण रंगि ॥१७४॥

६—नाम अज्ञात—सप्तक्षेत्र रासु, गा० ११९, सं० १३२७ माह सुदि १० गु०—

आदि :—सवि अरिहंत नमेवि सिद्धसूरि उवझाय।

पनर कर्मभूमि साहू तोह पणमिय पाय ॥

× × × ×

अंत :—संवत् तेर सतावीसइ माह मसवाडइ,

गुरुवारि आवीय दसमि पहिलइ पखवाडइ।

तहि पुरु हुउ रासु सिवसुख निहाणू,

जिण चउवीसइ भवियणइ करिसिइ कल्याणू ॥ ११८ ॥

(प्र० प्राचीन गुर्जर काव्यसंग्रह)

७—जगडु—खरतर जिनेश्वरसूरिभक्त सम्यक्त्व माई चौपइ सं० १३३१ पूर्व—

आदि :—भणो भणउं माई धुरि जोइ, धम्मह मूलु जु समकित होइ।

समकित विणु जे क्रिया करेइ, तातइ लोहि नीरु घालेइ ॥ १ ॥

(प्र० गुर्जर काव्यसंग्रह)

८—अज्ञात—स्तंभतीर्थ अजित शांतिस्तवन, गा० २५, सं० १३४१ के पीछे—

अंत :—जो नयरि पल्हणपुरि जिणेसर हत्थिकमलि पयट्ठिउ।

विकमा तेरह इगुणवीसइ वइयदेव अहिट्ठिउ ॥

ति तीस भूरि गुरुवयसेहिं खंभ नयरि समाखिउ ।

इकताल बच्छरि देव मंदिरि, देव सुविहि संघि निवेसिउ ॥ २ ॥

(हमारे संग्रह की सं० १५१६ में लिखित प्रति में)

६—पद्म—

(क) शालिभद्रकक्क, सं० १३५८ लि० प्रति बड़ौदा सेंट्रल लायब्रेरी—

आदि :—भलि भंजणु कम्मारिबल वीर नाहु पणमेवि ।

पउमु भणइ कक्क खारिण सालिभद्दगुण केइ ॥ १ ॥

(ख) दूहा मातृका, सं० १३५९ लि० उपर्युक्त प्रति—

आदि :—भले भलेविणु जगतगुरु पणयउ जगहपहाणु ।

जासु पसाइं मूढ जिय पावइ निम्मलु नाणु ॥ १ ॥

(प्र० प्राचीन गुर्जर काव्य संग्रह)

१०—प्रज्ञातिलक-शि०—कच्छूली रास, गा० सं० १३६३ कोरंटा—

आदि :—गणवइ जे जिम दुरिय विहंडणु, रोस निवारणु तिहुयणु मंडणु ।

पणमवि सामीउ पास जिण ।

सिरि भद्देसर सूरिहिं वंसो, बीजी साहइ वंनिसु रासो,

धमीय रोलु निवारीउ ।

(सं० १४०८ लिखित प्रति, प्र० प्राचीन गुर्जरकाव्य संग्रह)

११—वस्तिगु—वीस विहरमानरास, सं० १३६८ माह सुदि ५ शुक्र—

आदि :—विहरमान तित्थयर पाय कमल नमेविय ।

केवल धर दुन्नि कोडि सवि साधु नमेव्विय ।

जिण चउवीसइ पाय नमेसु, गुरुयां सहिगुरु भत्ति करेसु ।

समरिय सामिणि सारद देवि पढिसिउ जिण वीसइ संखेवि ॥ १ ॥

(प्र० जैनयुग पु० ५ पृ० ४३८)

१२—गुणाकर सूरि—श्रावकविधि रास, स० १३७१ (६४ ?)—

आदि:—पाय पउम पणमेवि चउवीसवि तित्थंकरह ।

श्रावकविधि संखेवि भणइ गुणाकर सूरि गुरो ॥ १ ॥

जिहि जिणमंदिर सार , अनर तपोधन पामियण ।

श्रावक जन सुविचार, घणुं तृणु इंधण जलप्रघट्यो ॥ २ ॥

(प्र० आत्मानंद शताब्दी स्मारक ग्रंथ, प्रति हमारे संग्रह में सं० ३०८८)

१३—अंबदेवसूरि—समरा रासो, सं० १३७१ के आस पास—

आदि:—पहिलउ. पणमिउ देव आदिसर सेतुजसिहरे।
अनु अरिहंत सव्वेवि, अराहउ बहु भत्तिभरे ॥ १ ॥
तउ सरसति सुमरेवि, सारयसहर निम्मलीय।
जसु पयकमल पसाय, मूरखु माणइ मन रलिय ॥ २ ॥

(प्र० प्राचीन जैन गुर्जर काव्यसंग्रह)

१४—धर्मकलश—जिनकुशलसूरिपट्टाभिषेक रास, सं० १३७७ के आसपास—

आदि :—सयल कुशल कल्लाणवल्ली घण संति जिणेसर।
पणमेविणु जिनचंद्र सूरि, गोयमसमु गणहर।
नाणमहोयहि गुण निहाण गुरु गुणगाएसु।
पाट ठवण जिनकुशलसूरि वर रासु भणेसु ॥ १ ॥

(प्र० हमारे संपादित ऐतिहासिक जैन काव्यसंग्रह में पृ० १५)

१५—सारमूर्त्ति—जिनपद्मसूरिपट्टाभिषेक रास, सं० १३९० के लगभग—

आदि:—सुरतरु रिसह जिणंद पाय अनुसर सुय देवी
सुगुरुराय जिणचंद सूरि गुरुचरण नमेवी ॥
अमिय सरिसु जिणपद्म सूरि पभवणह रासु।
सवणंजलि तुम्हि पियउ भविय लहु सिद्धिहि तासु ॥ १ ॥

(प्र०-ऐ० जै० का० सं०)

१६—जिनप्रभ सूरि— खरतर जिनसिंहसूरि-शिष्य, पद्मावतीदेवी चौपइ—

आदि :—श्री जिन शासणु अवधारि, झायहु सिरि पउमावइ देवि।
भविय लोय आणंदपरि, दुल्लहउ सावयजम्म लहेवि ॥

(प्र०—भैरपदमावती काव्य में)

उपर्युक्त कृतियों के अतिरिक्त और भी अनेक फुटकर रचनाएँ उस समय की उपलब्ध हैं। यहाँ तो केवल सहज ज्ञात कतिपय कृतियों का उदाहरणार्थ निर्देश किया गया है।

प्राचीन हिंदी भाषा के गद्य का उदाहरण एक भी उपलब्ध नहीं है। १४वीं शताब्दी के लिखे कई जैन ग्रंथ उपलब्ध हैं, जिनमें गद्य की भी रचनाएँ पाई जाती हैं। अतः नीचे १४वीं शताब्दी की जैन-गद्य-रचनाओं के उदाहरण दिए जाते हैं—

१—प्रथमां चानवा जरी नायका भणइ—

अहे बाई एहु तुम्हारा देसु कवण लेखा माहि गणियइ। किसउ देसु गुजरातु, सांभलि माहरी बात। एउ जु लाधउ माणुसओ जमारओ आलि मात्रि काइ हारउ, ए जि सम्यक्त्व मूल बारह व्रत पालियहि। किसा किसा बारह व्रत। × × × ए दशा बारह व्रत पालयहिं। आशातना टालियहिं। पूजिय श्री आदिनाथ देवता। पापु नासइ शत्रुंजय सेवता।

अनी किसउ घणउं भणियइ माहरी माइ एहु देसु गुजराति छाडी करि अनइ अनेरइ देशि किसी परि मनु जाइ। जिणि देशि मादल तणा धोंकार १ तिविल तणा दोंकार २ वंश तणा पौंकार ३ नृत्य तणा समाचार ४ ताल तालकार ५ आवजी ६ परवावजी ७ पटावजी ८ खंधावजी ९ भूगलिया १० करडि ११ झल्लरि १२ पडह १३ समेतु १४ पंचसबदु वाइयइ। गूजरी गीतु गाइयइ। लास्यु तांडवु नाचियइ। मृदंगु वाइयइ। हे हैदिहै बाई किशी परि बाइयइ।

२—जब मालवा देश की बावली बोलण लागी, तब अवर देश की परिभागी। दिक्खु रे मेरी बहिणी फुणि फुणि मेरा देसु, काहउ वक्खाणहि। मेरा देश की बात न जाणहि। जिणि देशि मंडवगढ केरा ठाउ, जयसिंघ देव राउ। मसूर का थान। अवर देश का काहउ मानु। काटा सूतु अरु तुट्टणा। कोरा साडा अरु भूणा। ठाली अरु वाजणी पेटिली अरु नाचणी। दिक्खु रे मेरी बहिणी। बलि बलि काहउ बिललाइ। तोरा बोल्या सहु वाइयइ। मालव देश की परिनीकी सिरि की टीकी। सेत चीर का साड़ा। पूजियइ आदिनाथ युग राज। दिहेबाइ कवणि परि पूजियइ।

३—अथ पूर्वी नायिका का बोल्या सुणहुगे रे भइया। इथु जुगि जाणिवउ धीरे, दिखु रे मेरी बहिनी फुनि फुनि मेर देसु कितवु खर ति आहि। मेरे देस की बात न जानसि, जेहि देस ऐसे मानुस कैसे—इक्कु धीरे बीरे विवेकिए। परम दाप के मोडन मराट मल्ल, तुम्ह कतुके जान, कतुके परान,

बवा की आन ! अम्हां तुम्हां बड़ा अंतरु आहि । कइसु अंतरु, तुम्ह के मानुस तरि मोटे, ऊपरि मोटे विचि छोटे । अत अम्ह के मानुस-तरि नान्हे ऊपरि नान्हे विचि पूतु कर सु साटविउ आहि । अइस दीसतु हइ, जइसा पूनम का चांदु । अधकोदव के चावर खाइयहि । गीतु गाइयइ । सुठि नीके बानिए वसहिं । कइसे बानिए, आचबन्चा ।

४-मरहठी-तरि छाया जनमु आवागमणु कवणा गति न होइ रे बप्पा । तरि भविक जनत्तं पुच्छिसि भई अनिक देस देशांतर चातुर्दिशा मागुं मया देखुणी । अपूर्वु सर्व तीर्थांचा भेटु गीत राचु गीतल्लास कट समस्त गूमटा । तरिया इकि नहीं सागिन पुरी सत्तरि सहस्र गुजरातांचा भीतरि गिरि सेतुञ्जं चा ऊपरि । श्री ऋषभनाथाचा, रंगमंडपि अनिक गीत ताल पकाम चित्तु कारणी । निजकरकमलचा द्रव्य उपार्जनी । परमेसर वीतरागाचा भवनिबेचती । तः पुनरपि जनमुनिवारिणे अहं एवमेव सत्यं अतात्यंची आण ।

(प्र० 'राजस्थानी' वर्ष ३ अं० ३)

चारों प्रांतीय भाषाओं के ये प्राचीन उदाहरण बहुत सुंदर एवं महत्त्व के हैं । चारों भाषाओं के क्रमिक विकास एवं तारतम्य जानने के लिये ये अत्यंत उपयोगी हैं । इनसे हिंदी भाषा का विकास पूर्वी भाषा से हुआ जान पड़ता है ।

५--सं० १३३० में लिखित एक ताड़पत्रीय प्रति से—

अठार पापस्थान त्रिविधिहि मनि वचनि काइ करणि करावणि अनुमति परिहरउ अतीतु निंदउ वर्तमानु संवरहु अनागतु पच्चखउ । पंच परमेष्टि नमस्कारु जिनशासन सारु, चतुर्दश पूर्व समुद्धारु, संपादित सकलकल्याणसंभारु, विहित दुरितापहारु, क्षुद्रोपद्रव पर्वत वज्र प्रहारु, लीला दलित संसारु सुतुम्हि अनुसरहु जिमि कारणि चतुर्दश पूर्वधर चतुर्दश पूर्व संविधिउ ध्यान परित्य-जिउ पंच परमेष्टि नमस्कारु स्मरहि तउ तुम्हि विशेषि स्मरेवउ अनइ परमेश्वरि तीर्थंकर देविइ सउ अर्थु भणियउ अच्छइ, अनइं संसारतणउ प्रतिभउ मकरिसउ, अनइकरि नमस्कार इहलोक परलोकि संपादियइ ।

६—सं० १३३९ में रचित संग्रामसिंह के बालशिक्षा ग्रंथ के शब्द एवं क्रिया प्रकरण से—

कीजइ, करई, करिजे, करि, कीजइ कीधइं करिसि, कीधु, करत करिसिई, करतउ, करिया, करिवा (कृत्प्रत्यय से), जिम, तिम, अहियं तहियं, जीहां, तिहां, इहां, किसउ, तिसउ, ताहरु, तुम्हारुं, केतलु, तेतलु, भेटइ, वीरवइ, सेवइ, विचारइ, विणसई।

७—सं० १३५८ में लिखित एक प्रति से—

माहरउ नमस्कारु अरिहंत हुउ, किसाजि अरिहंत रागद्वेष रूपि आ अरि वयरी जेहि हणिया अथवा चतुषष्टि इंद्र संबंधिनी पूजा महिमा अरिहइ × × × तीह मंगलीक सर्व माहिं प्रथमु मंगलु एहु ईण कारणि शुभकार्य आदि पहिलउं सुमेरवउ, जिवति कार्य एह तणइ प्रभावइ वृद्धिमंता हुयइ × सुतुम्हे विसेष हइ हिवडा तणइ प्रश्नादि अर्थयुक्तु ध्येयु, ध्यातव्यु, गुणेवउ, पठेवउ।

८—सं १३६९ में लिखित एक ताड़पत्रीय प्रति से—

हि० दु कृत गरिहा करउ। जु अणादि संसार माहि हींडतइ एतह ईणि जीवि मिथ्यात्व प्रवर्त्ताविउ। कुतिथुं संस्थापिउ, कुमार्ग प्ररूपिउ × × देवस्थानि द्रविवेवि पूजा महिमा कीधी, तीर्थयात्रा रथजात्रा कीधी पुस्तक लिखाधां × अनेराइ' धर्मानुष्ठान तणइ विरजु ऊजमु कीधु सु अम्हारउ सफलु हुओ इति भावनापूर्वक अनुम्मोदउ।

उपर्युक्त सभी अवतरण मुनि जिनविजय जी संपादित प्राचीन गुजराती गद्यसंदर्भ से लिए गए हैं। सुललित गद्यग्रंथों की रचना सं० १४११ में खरतरगच्छीय तरुणप्रभसूरिजी के 'षडावश्यक बालावबोध' से प्रारंभ होती है। उसके बाद जैन विद्वानों ने सैकड़ों ग्रंथों के अनुवाद एवं टीकाएँ की हैं। अतः जैन भाषा-ग्रंथों से सब समय के उदाहरण मिल सकते हैं।

सुर्जनचरित महाकाव्य

[लेखक – श्री दशरथ शर्मा]

पृथ्वीराज रासो की ऐतिहासिकता और प्राचीनता का विचार करते हुए मैं 'इंडियन हिस्टारिकल क्वार्टरली'[1] और 'राजस्थानी'[2] पत्रिका में इस संस्कृत महाकाव्य (सुर्जनचरित) का उल्लेख कर चुका हूँ। यह महत्त्वपूर्ण ग्रंथ केवल पृथ्वीराज रासो का आदिम स्वरूप निर्णय करने के लिये ही नहीं, बल्कि चौहानों के प्राचीन इतिहास और मुगलकाल की कुछ घटनाओं के लिये भी अत्यंत उपयोगी है। पुस्तक अभी हस्तलिखित रूप में ही वर्तमान है। गुरुवर श्री गौरीशंकर हीराचंदजी ओझा की कृपा से मुझे इस पुस्तक को देखने का अवसर मिला है, और उन्हीं की प्रतिलिपि के आधार पर मैं इस पुस्तक का सारांश और विषय-विश्लेषण पाठकों के सम्मुख उपस्थित कर रहा हूँ। महाकाव्य के नायक इतिहास-प्रसिद्ध श्री हम्मीर के वंशज राव सुर्जन हाड़ा हैं। ये अकबर के समय रणथंभोर के शासक थे। इन्होंने जिस वीरता से इस दुर्ग को हस्तगत कर मुगलों का सामना किया था, वह 'अकबर-नामा' और 'मुंतखब-उत-तवारीख' में भली भाँति वर्णित है। सुर्जन-चरित ने इस विषय पर कुछ अधिक प्रकाश डाला है। महाकाव्य के रचयिता चंद्रशेखर बंगाली थे। उन्होंने राव सुर्जन के अनुरोध से ही ग्रंथ को आरंभ किया था[3]। परंतु इसकी समाप्ति से पूर्व ही सुर्जन का

१—ग्रंथ १६, अंक ४

२—भाग ३, अंक ३

३—गौडीयः किल चन्द्रशेखरकविः, यः प्रेमपात्रं सताम्
अम्बष्ठान्वयमण्डलात्कृतधियो जातो जितामित्रतः।
निर्बन्धान्नृपसुर्जनस्य नितरां धर्म्मैकतानात्मनो
ग्रन्थोयं निरमायि तेन वसता विश्वेशितुः पत्तने ॥ सर्ग १०, श्लोक ६४।

स्वर्गवास हो गया और यह ग्रंथ उनके सुपुत्र भोज के समय समाप्त हुआ। सुर्जन की वदान्यता और विद्वत्प्रियता के लिये पाठकगण टाड राजस्थान का पृष्ठ देखें।

विषय-विश्लेषण और सारांश

सर्ग १ :—

श्लोक १—५ — श्याम, आशापुरा, शाकंभरी, सरस्वती और साधुसमाज को प्रणाम।

„ ६.— कवि द्वारा अहंकारापनयन

„ ७ — सुर्जन की आज्ञा से काव्य का निर्माण

„ ८ — सुर्जन के रहते दुर्जनों से कोई भय नहीं।

„ ९—२० — प्रथम चौहान राजा दीक्षित वासुदेव था। वह वृंदावती पर राज्य करता और अत्यंत प्रतापी था।

„ २१—४४ — वासुदेव के परवर्ती राजाओं की वंशावली इस प्रकार दी गई है :—

वासुदेव
।
नरदेव
।
श्रीचंद्र
।
अजयपाल (इसने अजमेर बसाया)
।
जयराज
।
सामंतसिंह
।
गुब्बक
।
चंदन
।
वप्र
।
विश्वपति

सर्ग २ :—

श्लोक १—११ — अभी अनेक राजा वर्तमान थे जिन पर विश्वपति ने विजय नहीं पाई थी। अतः सांसारिक

सामान्य आनंदों से उसे कुछ सुख नहीं मिलता था। उसके मन में सदा विजय की इच्छा ही वर्तमान रहती।

श्लोक १२—२१ — विश्वपति का बालमित्र एवं गुरुपुत्र सुनय अत्यंत बुद्धिमान्, नीतिज्ञ और सर्वशास्त्रज्ञ था।

„ २२—४२ — राजा और सुनय का वार्तालाप। सुनय का विराग के विरुद्ध उपदेश।

„ ४३—४५ — राजा का उत्तर।

„ ४६—६१ — सुनय द्वारा उद्योग का उपदेश। शाकंभरी की आराधना से सिद्धिकथन।

„ ६२—६३ — भगवती की आराधना के लिये विश्वपति का प्रस्थान।

सर्ग ३ :—

श्लोक १—१० — विश्वपति सुनय सहित शाकंभरी के मंदिर के निकट पहुँचता है।

„ ११—१४ — शाकंभरी के नागरिकों द्वारा विश्वपति का स्वागत।

„ १५—२३ — शाकंभरी का उद्यान।

„ २४—५० — उद्यान और भवानी-भवन का सुनय द्वारा वर्णन।

„ ५१—६७ — राजा द्वारा भगवती की आराधना।

„ ६८—६९ — भगवती का प्रकट होना।

सर्ग ४ :—

श्लोक १—१२ — राजा द्वारा भगवतीस्तवन।

„ १३—२७ — वरदान—घोड़े पर चढ़कर जहाँ तक राजा पीछे नहीं देखे वहाँ तक लवण-समुद्र की उत्पत्ति होगी।

„ २८—३० — मनोरथ पूर्ण होने पर राजा अपनी नगरी गया।

श्लोक ३१—४२ — सुशासन एवं सर्वत्र विजय।
" ४३ — विश्वपति का पुत्र हरिराज।
" ४४—४५ — हरिराज की गद्दी और विश्वपति का स्वर्गगमन।
" ४६—५२ — हरिराज द्वारा दिग्विजय।
" ५३ — मंडोर के निकट उसने योधपुर का किला बनाया।

सर्ग ५ :—

श्लोक १—११ — हरिराज का पुत्र सिंहराज।
" १२—१७ — अवंतिनाथ की पुत्री से सिंहराज का विवाह। विवाहोत्तर आनंद।
" १८—२४ — पुत्रप्राप्ति के लिये व्रतादि। उनकी निष्फलता।
" २५—३८ — चिंताग्रस्त राजा। भतीजे भीमसिंह को राजगद्दी।
" ३९—४० — नए राजा को उपदेश।
" ४१ — भीमसिंह द्वारा दिग्विजय। मगध, गौड़, कलिंग, कर्णाट, कुंतल, लाट, द्वारावती, खस, कांबोज, तुषार, शक, कामरूपादि पर राजा की विजय।

सर्ग ६ :—

श्लोक १—२ — भीमसिंह का पुत्र विग्रहदेव।
" ३—१४ — विग्रहदेव ने गुर्जरों को हराया और उनका राज्य छीना।
" १५ — विग्रहदेव का पुत्र गुंददेव।
" १६—३१ — गुंददेव का पुत्र वल्लभ था। उसने भोज और चेदि पाल को हराया, और भोजराज को जीते जी पकड़ लिया, परंतु फिर कृपापूर्वक उसे छोड़कर सत्कृत किया।
" ३२ — वल्लभ का पुत्र रामनाथ।
" ३५ — रामनाथ का पुत्र चंद्र।

श्लोक ३६—४१ — पुत्र को राज्य सौंपकर उसने शैव-व्रत-परायण होकर तप किया।
" ४२ — वर प्राप्त कर उसने यवनों को हराया।
" ४३ — चंड का पुत्र दुर्लभ।
" ४४ — दुर्लभ का पुत्र दुलस।
" ४५ — दुलस-पुत्र विशाल।
" ४७ — उसने कर्ण को पराजित किया।
" ४८ — अवंति नगरी को जीता।
" ४९—६२ — अवंति-वर्णन।
" ६३ — राजा द्वारा उज्जयिनी में शिवपूजन।
" ६४—८० — शिवस्तुति।
" ८१ — विशाल का पुत्र पृथ्वीराज।
" ८६ — पृथ्वीराज का पुत्र अनलदेव।

सर्ग ७ :—

श्लोक १—२७ — शरदादि वर्णन।
" २८ — कार्तिक मास में पुष्करयात्रा।
" ३२—४९ — पुरोहित पुष्कर के माहात्म्य का वर्णन करता है।

चौहान कुल की उत्पत्ति का पुरोहित-द्वारा वर्णन:
" ५०—५५ — ब्रह्मा ने यहीं यज्ञ किया था।
" ५६ — उस यज्ञाग्नि से उद्‌भ्र धूम की उत्पत्ति।
" ५७ — इस विघ्न के पुरोवतार को दूर करने के लिये ब्रह्मा ने सूर्य की तरफ देखा।
" ५८—६१ — सूर्य के बिंब से धनुष, असि, तूणीर आदि को धारण किए चतुर्बाहु अर्थात् चाहुवाण की उत्पत्ति।
" ६२ — चाहुवाण ने बारह वर्ष तक राज्य किया था।

सर्ग ८ :—

श्लोक १—२५ — अनलदेव ने पुष्कर को खूब विभूषित किया। वहाँ अनेक मंदिर बनवाए।

श्लोक २६—२७ — अनलदेव का पुत्र जगदेव।
" २८ — जगदेव का पुत्र वीसलदेव।
" २९—५६ — वीसलदेव का पुत्र अजयपाल।

सर्ग ९ :—

श्लोक १—१७ — वसंत-वर्णन, स्त्रियों की क्रीडादि।
" १८ — राजा ने वनांत में प्रफुल्ल कमलाकर को देखा
" १९—२२ — उसके तट पर वेदिका पर एक सुंदरी बैठी थी।
" २३—२९ — राजा उसे देखकर कामाहत होता है।
" ३० — सुंदरी सर के बीच में घुस जाती है।
" ३४ — राजा को एक सिद्ध पुरुष का दर्शन।
" ३५—४६ — राजा को सिद्ध से मालूम होता है कि वह सुंदरी वासुकि-वंशजा नागकुमारी विजया है। वह भी राजा से प्रेम करती है; परंतु पिता के अधीन है।
" ४८ — राजा उसी सर में गोता लगाकर नागलोक पहुँचता है।
" ४९—५४ — नागलोक का वर्णन।
" ५५—६० — फणींद्र का वर्णन। राजा फणींद्र को प्रणाम करता है।
" ६१—६९ — राजा का नागलोक में सत्कार।
" ७० — सुदामा-नाग राजा से अपनी पुत्री का विवाह करता है।
" ७१ — राजा नगर को लौटा।
" ७२ — गंगदेव को राज्य देकर अजयपाल का वन-प्रस्थान।

सर्ग १० :—

श्लोक १—३ — गङ्गदेव का पुत्र सोमेश्वर।

श्लोक ४—५ — राजा ने कुंतलेश्वर की पुत्री कर्पूरदेवी से विवाह किया।

" ६—९ — कर्पूरदेवी के दो पुत्र—पृथ्वीराज और माणिक्य।

" १० — पृथ्वीराज विभुता का इच्छुक था।

" ११—१२ — बाहर कहीं विहारभूमि में कान्यकुब्ज से कोई प्रतिहारी पृथ्वीराज से मिलने आई।

" १३—४६ — प्रतिहारी का संदेश—

नवलक्षाधिपति कान्यकुब्जेश्वर की पुत्री कांतिमती अत्यंत सुंदरी है। उसने चारणों से आपका यश सुना और आपमें अनुरक्त हो गई।

एक रात स्वप्न में उसने आपका दर्शन किया और तब से वह सर्वथा कामवशीभूत है। परंतु उन्हीं दिनों कांतिमती ने सुना कि पिता उसे किसी दूसरे से ब्याहना चाहते हैं। यह सुनते ही कांतिमती ने अश्रुपूर्ण होकर कहा कि मैं उन महाराज को चाहती हूँ, परंतु यह केवल मोहमात्र है।

कन्या विवाह का संदेश भेजे तो यह उचित भी तो नहीं। परंतु सखी ने उसे आश्वासन दिया और मुझे आपके पास संदेश पहुँचाने की आज्ञा दी।

" ४७—५२ — पृथ्वीराज ने प्रतिहारी को यह कहकर वापस भेजा कि अवश्य कोई न कोई उपाय करूँगा।

" ५३ — अपने बंदी को प्रधान बनाकर राजा कान्यकुब्ज में घुसा। फिर अपना वेश छोड़कर नगर के रास्ते और कान्यकुब्जेश्वर का आशय

जानने के लिये उसने वैतालिक का अनुसरण किया। अपने स्थान पर वह राजा परंतु जयचंद्र की सभा में बंदी का पारर्वचर बन-कर रहता। वह रात्रि के समय घोड़े पर चढ़कर अकेला ही गंगातट पर चक्कर लगाया करता। एक चाँदनी रात को वह घोड़े को पानी पिलाने के लिये नदी के रेतीले किनारे पर पहुँचा। घोड़े के फेन के गंध से अनेक मछलियाँ ऊपर उठ आईं। राजा अपने गले से मोती निकालकर फेंकने लगा और वे उन्हें खीलें समझकर उनकी ओर झपटने लगीं। अपने महल के झरोखे से कान्य-कुब्जेश्वर की कन्या ने राजा का यह कृत्य देखा। उस दासी ने, जो पृथ्वीराज के पास गई थी, राजकुमारी को बतलाया कि यही पृथ्वीराज है। यदि संदेह हो तो उसकी परीक्षा कर सकती हैं। राजाओं की यह आदत ही होती है कि वे सदा अपने को नौकरों से घिरा हुआ समझते हैं। हार के समाप्त होते ही राजा यह विचार करता हुआ कि उसके साथ कोई नौकर पीछे की तरफ है, और मोतियों के लिये हाथ पसारेगा। राजकुमारी ने इतना सुनते ही मुक्ताजाल समर्पण कर एक दूती को भेजा। वह राजा के पीछे उसकी छाया के समान खड़ी हो गई। हार समाप्त होते ही राजा ने पीछे हाथ बढ़ाया और दासी ने उस पर मुक्ताजाल रख दिया। जब वे बिना गुँथे मोती समाप्त हो चुके, तब उसने अपने कण्ठ

से हार उतारकर दिया। स्त्रियों के उस कण्ठ-भूषण को देखकर राजा विस्मित हुआ। उसने पीछे की तरफ नजर डाली और उस स्त्री को देखकर पूछा कि तुमने किस कारण उन मँहगे मोतियों को वितीर्ण कर दिया।

दासी ने उत्तर दिया—"मैं राजकुमारी की परिचारिका हूँ और केवल यह निश्चय करने के लिये आई थी कि आप राजा पृथ्वीराज हैं या नहीं।" राजा ने हँसते हुए उत्तर दिया—"अपनी स्वामिनी से कह दो, कुछ प्रहर धैर्य रखे। कल रात को उसके हृदय को निश्चय हो जायगा।" इतना कहकर राजा अपने शिविर में आ गया। दूसरे दिन पृथ्वीराज महल में जा पहुँचा और वहाँ कुछ समय आनंद से व्यतीत किया। फिर उसने कहा—मैं सामंतों को बिना खबर दिए आया हूँ। इसलिये एक बार मेरा वहाँ जाना जरूरी है। वहाँ से वापस आकर तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करूँगा। परंतु जब उसने प्रिया को भावी विरह से दुखी देखा तो द्वार-स्थित एक घोड़े पर कब्जा किया और उस पर राजकुमारी सहित सवार होकर अपने शिविर में जा पहुँचा।

श्लोक—११३—११५—उस समय एक मुख्य सामंत आकर कहने लगा—आप वधू-सहित प्रस्थान करें। आप जब तक चार योजन तय करेंगे, तब तक अरि-सैन्य को मैं रोकूँगा। दूसरे ने छः गव्यूति की प्रतिज्ञा की। इस प्रकार इंद्रप्रस्थ पहुँचने में जितने योजन थे उन्हें सामंतों ने बाँट लिया।

वे वास्तव में दनुजों के अवतार थे जिन्होंने मनुष्य रूप धारण किया था। वे अपनी इच्छा से युद्ध में लड़कर अपने पूर्व रूप को प्राप्त करना चाहते थे।

श्लोक ११८—१२८—शत्रुसेना आ पहुँची। अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण कर प्रथम दानव ने शरीर त्याग किया। दूसरों ने भी इसी प्रकार प्रतिज्ञा पूर्ण की। जब राजा इंद्रप्रस्थ पहुँचा तब थोड़े ही पराक्रमी सामंत बाकी रहे थे। वहाँ पहुँचकर पृथ्वीराज ने शत्रुसैन्य के मथन का निश्चय किया। पृथ्वीराज से हारकर कान्यकुब्जेश्वर यमुना के जल में डूब मरा। इस प्रकार विजय एवं वधू को प्राप्त कर राजा ने कई दिन आनंद से व्यतीत किए।

" १२९—१३२—फिर दिग्विजय कर पृथ्वीराज ने म्लेच्छपति शहाबुद्दीन को बाँध लिया। इक्कीस बार पृथ्वीराज ने शहाबुद्दीन को कारागार भेजा और दया कर छोड़ दिया। परंतु उस कृतघ्न ने यह उपकार नहीं माना और छल-बल से राजा को कैद कर अपने देश ले गया और नेत्रहीन कर दिया।

" १३३—१४४—पृथ्वी पर चक्कर लगाता हुआ उसका मित्र चंद नामक बंदी वहीं पहुँच गया। उसने राजा को समझाया-बुझाया और जीवन के अत्यंत कष्टकर होने पर भी उसे प्रतिशोध की इच्छा से धारण करने की प्रार्थना की।

" १४५—१४९—परंतु राजा ने कहा—'मेरे जीवन से अब क्या लाभ है? न मेरे पास सेना है और न आँखें ही।'

श्लोक १५०—१५५—बंदी ने कहा—'तुम शब्दवेधी तो हो ही। मैं ऐसा उपाय करूँगा कि धनुष तुम्हारे हाथ में हो और शत्रु उसका लक्ष्य बने।' फिर बंदी यवनराज की सभा में गया और विद्या-बल से उसे वश में कर लिया। एक दिन मौका देखकर उसने कहा—तुमने जिस राजा को कैद कर अंधा कर दिया है, वह बाण द्वारा लोहे के कड़ाहों को बेध सकता है।

" —१५६—१६८—कालवश यवनराज बातों में आ गया। सभा में एक सुवर्णस्तंभ पर लोहे के कड़ाह रखे गए। पृथ्वीराज के हाथ में धनुष दिया गया और बाण चलाने की तैयारी हुई। तब चंद ने यवनराज से कहा-"अब आप तीन बार आज्ञा दें तब वह लक्ष्य-वेध करेगा।" शहाबुद्दीन के मुँह से आज्ञा निकलते ही बाण उसके तालु-मूल से उसके प्राण हरता हुआ निकल गया। सब लोग घबरा गए। इतने में बंदी ने राजा को घोड़े पर बैठाया और कुरुजांगल देश ले गया। वहाँ पृथ्वीराज पृथ्वी को यशःपूर्ण कर परलोक सिधारा।

सर्ग ११ :—

श्लोक १— २ — पृथ्वीराज का पुत्र प्रह्लाद।

" ३ — प्रह्लाद का पुत्र गोविंदराज।

" ४ — गोविंदराज का पुत्र वीरनारायण

" ५ — वीरनारायण का पुत्र वाग्भट। इसने यवनों से रणथंभोर वापस लिया।

" ६ — वाग्भट का पुत्र जैत्रसिंह।

श्लोक ७—६२ — जैत्रसिंह का पुत्र हम्मीर। वह अत्यंत वीर था। उसने तुर्कों को हराया और दिल्ली नगर जीत लिया। फिर मंत्रियों और पुरोहितों सहित वह चंबल नदी पर स्थित पट्टनपुर नामक नगर में गया। वहाँ उसने तुलादान और विविध अन्य दान किए। फिर उसने कोटि-मख यज्ञ आरंभ किया।

,, ६३— यह देखकर कि अब रणथंभोर में राजा नहीं है, उसके वैरी अलाउद्दीन ने उसकी नगरी की तरफ प्रस्थान किया। आगे आगे उसका भाई उल्लू खाँ (उलूग खाँ) पचास हजार फौज लेकर रवाना हुआ और उसने जगरापुर में शिविर बनाया। उल्लू खाँ के हारने पर अलाउद्दीन स्वयं आया। हम्मीर भी धीरे धीरे यज्ञ समाप्त कर अपने नगर को लौटा।

सर्ग १२ :—

श्लोक १—२१ — अलाउद्दीन के दूत ने हम्मीर की सभा में आकर कहा—"अलाउद्दीन को सभी कर देते हैं। वह सात वर्ष से राज्य कर रहा है; परंतु तुमने उसे अब तक कुछ नहीं दिया। महिमासाह आदि को सेनाधिपति बनाकर तुमने और भी अपराध किया है। और अधिक क्या कहा जाय, तुमने तो जगरापुर का भंग किया है, जहाँ यवनेश्वर के भाई का शिविर था। अब भी तुम गले में शृंखला बाँधकर महिमासाह आदि को सुल्तान के भेंट कर दो और जितना कर चढ़ा है, चुका दो तो तुम्हारा बचाव हो सकता है। कुछ हाथी और सौ नर्तकियाँ भी भेंट करो। यदि

ऐसा न किया तो तुम शीघ्र उसी रास्ते से जाओगे जिससे गयासुद्दीन गया है।"

श्लोक २२—३८ — हम्मीर ने कहा—"हम शरण देना जानते हैं, कर देना नहीं। महिमासाह आदि मेरी शरण आए हैं। मेरी अनुपस्थिति में तुमने शहर घेर लिया तो कौन बड़ा काम किया है। शून्य-स्थान में तो गीदड़ भी घुस जाते हैं। यदि तुम्हारे मालिक में शक्ति हो तो वह उसे प्रकट करे।"

„ ३९—५५ — दूत ने भी कुछ कठोर वचन कहे। इसलिये वह वहाँ से निकाल बाहर किया गया। हम्मीर ने दुर्ग पर से शत्रुसेना को देखा और अपनी रानियों को जौहर (वीरपत्नी-व्रतचर्या) के लिये तैयार होने को कहा। फिर वह महिमासाह आदि के साथ शत्रु के सम्मुख रवाना हुआ और रानियों ने अपना शरीर अग्निसात् किया।

„ ५६—७७ — अत्यंत घोर युद्ध हुआ। अपनी सेना को नष्ट होते देखकर हम्मीर अलाउद्दीन की तरफ बढ़ा। उसने अनेक शत्रुओं को काट डाला। परंतु अंत में भिंदिपाल से घायल होकर वह वीर-शय्या पर सदा के लिये सो गया।

सर्ग १३ :—

श्लोक १—५१ — शहाबुद्दीन को बाण से विद्ध करनेवाले राजा पृथ्वीराज का छोटा भाई माणिक्य राज था। उसका पुत्र चंडराज, चंडराज का पुत्र भीमराज, भीमराज का पुत्र विजयराज, विजयराज का पुत्र रयण, रयण का पुत्र

कोल्हण, उसका पंग, पंग का देव, देव का समरसिंह, समरसिंह का नरपाल, नरपाल का हम्मीर, हम्मीर का वरसिंह, वरसिंह का भारमल्ल और भारमल्ल का पुत्र नर्मद था। नर्मद की पत्नी का नाम धारा और पुत्र का अर्जुन था। अर्जुन ने दशरथ की पुत्री जयंती से विवाह किया और पुत्र की इच्छा से भगवान् की आराधना की। भगवान् ने स्वप्न में उसे यथेष्ट वरदान दिया। यथासमय पुत्रोत्पत्ति हुई। पुत्र का नाम सुर्जन रखा गया।

श्लोक—५२—६६— बाल्य काल में ही सुर्जन ने सब विद्याओं का अर्जन किया। शनैः शनैः वह युवावस्था को प्राप्त हुआ।

" ६७—८०— उदयसिंह राजा के संश्रित होकर सुर्जन ने सर्वोज्ज्वला लक्ष्मी प्राप्त की। वह अत्यंत विष्णुभक्त था। वह केवल कुलागत वृंदावती का ही नहीं प्रत्युत अनेक दूसरी नगरियों का भी स्वामी था। उसने मालवेश को हराकर अनेक अस्त्रों से सुसज्जित कोटा नाम का दुर्ग लिया (७६)।

सर्ग १४ :—

श्लोक—१ —९४— राजा जगमाल ने अपनी पुत्री कनकावती का विवाह करने के लिये सुर्जन के पास पुरोहित भेजा। राजा ने माता की आज्ञा से संबंध स्वीकार किया और वह जगमाल के नगर में पहुँचा। स्त्रियों ने वधू का यथोचित शृंगार किया। रात्रि हुई, चंद्रमा का उदय हुआ और परिवार सहित सुर्जन राजा जगमाल के

घर गया। विवाह विधिपूर्वक संपन्न हुआ। कई दिन आनंद-प्रमोद में वहीं बीते। फिर राजा ने अपने नगर को जाने की छुट्टी माँगी।

सर्ग १५ :—

श्लोक— १— ६— चंद्रास्त-वर्णन।

" ७— १३— सूर्योदय-वर्णन।

" १४— ३५— कनकावती का बिदा होना और उसकी माता का उपदेश।

" ३६— ८०— कनकावती सहित आनंद-प्रमोद। ग्रीष्म ऋतु का वर्णन। जल-क्रीड़ा।

सर्ग १६ :—

श्लोक १— ५४— सुर्जन के अनेक पुत्र हुए। उनमें पटरानी कनकावती का पुत्र भोज मुख्य था। इसी समय दिल्ली में बादशाह अकबर राज्य करता था। उसने अनेक पर्वतीय दुर्गों को आसानी से जीत लिया, भ्रूभंगमात्र से राजाओं को कर देने के लिये विवश किया। और समग्र पृथ्वी को वशीभूत कर सुर्जन की राजधानी पर आक्रमण करने का विचार किया। उसके अनेक अनुभवी सेनापतियों ने रणथंभोर पर आक्रमण किया। परंतु सुर्जन ने उन सबको रण में तेरह बार परास्त किया। तब हुमायूँ का पुत्र अकबर स्वयं वहाँ पहुँचा। सुर्जन भी पट्टनपुर से सेना सहित रवाना होकर अकबर का सामना करने के लिये रणथम्भोर आया।

सर्ग १७ :—

श्लोक १ — २६— घोर युद्ध हुआ। दोनों ओर से तोपें चलने लगीं, गोले बरसाए गए, बाण चले।

श्लोक २७ — ५६— शत्रु-सेना द्वारा अपने सैन्य को विकल देखकर सुर्जन घोड़े पर चढ़ा। उसकी मार को न सहते हुए मुसलमान भागने लगे। उनकी यह दशा देखकर सम्राट् ने अपने सैनिकों को साहस दिलाया। वे लौट पड़े और सुर्जन का घोड़ा मारा गया। उसके धनुष की प्रत्यंचा भी कट गई। तब सुर्जन ने केवल तलवार से युद्ध किया। शत्रुओं ने अब उसका कवच भी शस्त्रों द्वारा तोड़ दिया परंतु सुर्जन तब भी लड़ता रहा। उसकी इस वीरता को देखकर बादशाह 'शाबाश' 'शाबाश' चिल्लाने लगा। गुणों की असाधारणता तो वही है जो शत्रु के चित्त को भी प्रमुदित करे। सायंकाल के समय अकबर अपने शिविर में लौटा और सुर्जन अपने दुर्ग पहुँचा।

सर्ग १८ :—

श्लोक १—२२ — प्रातःकाल जब फिर युद्ध के नगाड़े बजाए गए तब अकबर का मंत्री द्वार पर आकर सुर्जन से मिला। सुर्जन उसे अभ्यर्थनापूर्वक अपनी सभा में ले गया। तब मंत्री ने उससे कहा—"मैं बादशाह की आज्ञा से तुम्हारे पास आया हूँ। बादशाह तुम्हारे शौर्य से प्रसन्न हैं। तुम रणथंभोर बादशाह को दो और उसके बदले में गङ्गा, यमुना या नर्मदा के तट पर या अन्य किसी स्थान पर अच्छा राज्य ग्रहण करो। अपने से अधिक बलवान् से हठपूर्वक झगड़ा करना ठीक नहीं। यदि विशेष

झगड़ा किया तो तुम्हारी वही दशा होगी जो जयसिंह के पुत्र की हुई थी। सुर्जन ने तीर्थगमन की इच्छा से अकबर की बात स्वीकार की।

श्लोक २३—८० — कुछ दिन वह नर्मदा-किनारे रहा। फिर मथुरा पहुँचा। वहाँ से असंत तीर्थ और वृंदावन गया। इसके बाद गोवर्धन के दर्शन किए। राजा ने वर्षाकाल इन्हीं स्थानों में बिताया और फिर काशी के लिये प्रस्थान किया।

सर्ग १६ :—

श्लोक १— ७ — मकर संक्रांति के समय सुर्जन ने प्रयाग पहुँचकर स्नान-दानादि किया।

„ ८— २९ — उसके बाद वह वाराणसी आया। वहाँ गोपाल नामक व्यास ने इस तीर्थ का माहात्म्य वर्णन किया।

„ ३०—४९ — सुर्जन ने वहाँ खूब दान किया, अनेक तालाब खुदवाए, भगवान् विश्वेश्वर को मणिमय किरीट समर्पित किया और कई दिन वहाँ पुण्यमय जीवन व्यतीत किया। फिर वहीं मणिकर्णिका घाट पर सुर्जन ने देह-त्याग किया। कनकावती आदि उसकी पत्नियाँ सती हुईं।

सर्ग २० :—

श्लोक १— ७ — सुर्जन की मृत्यु पर सर्वत्र शोक।

„ ८—६३ — पुरोहित ने सुर्जन के पुत्र भोज को अभिषिक्त किया। भोज ने गुजरात-विजय में अकबर को सहायता दी थी। अभिषेक के बाद उसने

सुंदर वस्त्र-आभूषण आदि पहने। लोगों ने नजरें कीं, आनंद मनाया। राजा ने दान आदि किया, शत्रुओं को दंड दिया और दिग्विजय किया। दिल्लीश ने उसे पुरस्कृत किया। यह वृंदावती-नायक पुत्रों सहित चरणाद्रि में स्थित है।

श्लोक ६४ — गौड़ीय अंबष्ठान्वयज चंद्रशेखर कवि ने काशी में रहते हुए इस ग्रंथ की रचना नृप सुर्जन के निर्बंध से की।

रामचरितमानस के प्राचीन क्षेपक

[लेखक—श्री शंभुनारायण चौबे, बी० ए०, एल्-एल० बी०]

रामचरितमानस में क्षेपक कब से जोड़े जाने लगे, इसका कोई सफल अनुमान नहीं किया जा सका है; पर इतना अवश्य है कि क्षेपक-रचना की मूल मनोवृत्ति गोसाईंजी के प्रति श्रद्धांजलि थी। जिस प्रकार हम आज अपने नैत्यिक पाठ की स्तोत्र-कुसुमांजलि तैयार करने के लिये भिन्न भिन्न स्थानों के सुंदर, सुललित श्लोक एकत्र करते हैं, उसी प्रकार भक्तों ने रामकथा से संबंध रखनेवाले सभी वर्णनीय विषयों को रामचरितमानस में स्थान देना चाहा। इसीसे क्षेपकों की रचना प्रारंभ हुई होगी।

रामचरितमानस के संपूर्ण क्षेपक एक साथ नहीं बने। ये समय समय पर भिन्न भिन्न भक्तों द्वारा रचे गए हैं। संपूर्ण रामचरितमानस की सबसे प्राचीन पोथी, जो देखने में आई है वह, सं० १७०४ वि० की काशिराज की प्रति है। इसे पं० रघू तिवारी ने काशी में (लोलार्क-कुंड के समीप) लिखा था। इसमें पर्याप्त मात्रा में क्षेपकों का समावेश है—विशेषतः आरण्य कांड में। रघू तिवारी केवल प्रतिलिपिकार थे, क्षेपक इनके रचे हुए नहीं हैं। जिस प्रति से आपने लिखा था, वह सं० १६५० वि० के बाद की लिखी हुई होगी और बहुत संभव है, उस पोथी के लेखक ने ही क्षेपकों की रचना की हो। पर इन्हींने सब क्षेपक नहीं रचे, क्योंकि 'सुरसरि महि आवन की कथा,' 'सुलोचना सती प्रकरण,' 'लव-कुश कांड' इत्यादि काशिराज की प्रति में नहीं हैं।

दूसरी और तीसरी प्राचीन पोथियाँ, जो देखने को मिलती हैं, क्रमशः सं० १७२१ वि० तथा सं० १७६२ वि० की लिखी हैं। पर इन दोनों पोथियों में अयोध्याकांड के 'तापस प्रकरण' को छोड़, जिसके संबंध में इस लेख में आगे विचार किया गया है, एक भी क्षेपक नहीं है और इनके पाठ आपस में मिलते हैं। ये दोनों पोथियाँ भागवतदासजी के संग्रह

में थीं और अपनी गोलावाली प्रति[1] छपवाते समय उन्होंने इनका उपयोग किया था। सं० १७२१ वि० की प्रतिलिपि जिस पोथी से की गई थी वह भी सं० १६५० वि० के बाद गोसाईंजी के जीवनकाल के लिखे ग्रंथ की प्रतिलिपि रही होगी।

प्राचीन हस्तलिखित रामचरितमानस के स्फुट कांडों में श्रावण-कुंज का बालकांड और राजापुर का अयोध्याकांड विशेष उल्लेखनीय हैं। इन पोथियों में भी क्षेपक नहीं हैं। इन पोथियों के पाठ प्रामाणिक माने जाते हैं। इनके पाठों में जो कुछ विभिन्नता है, वह पोथी के मूल स्वरूप के कारण नहीं, वरन् लेखक की लेखन-शैली या उसके दोष के कारण है।

राजापुर के अयोध्याकांडमें 'तापस प्रकरण'—२।१०९।७ से २।११०।६ "तेहि अवसर एक तापस आवा" से "मुदित सुअसन पाइ जिमि भूखा" तक) एक खटकनेवाली चीज है। सभी प्राचीन प्रतियों में यह मिलता है। यही कारण है कि बिलकुल अप्रासंगिक और उखड़ा हुआ होने पर भी लोगों ने इसे ग्रहण किया है। राजापुर की प्रति को कुछ भक्तगण गोसाईं जी के हाथ की लिखी पोथी का अवशेष मानते हैं। उसमें तापस प्रकरण के होने से भी अधिकांश पोथियों में इसे स्थान मिला है।

यह तापस कौन था, इसके बारे में बड़ा मतभेद है।

(१) कोई इसे 'तापसी रूप से रावन बध का सदेह संकल्प' कहते हैं।

(२) कुछ लोग 'अग्नि' कहते हैं। 'तेजपुंज' और 'छुधित' दोनों अग्नि के धर्म हैं। ये अग्नि देवता अलक्षित वेष से सदा साथ रहे और समय समय पर तत्परता दिखलाते रहे—'प्रभुपद धरि हिय अनल समानी', 'पावक साखी देइ करि जोरी प्रीति दृढ़ाइ।' वन-गमन के समय अयोध्या से शृंगवेरपुर तक सुमंत साथ रहे। उनके लौटने पर, शृंगवेरपुर

---

१. सं० १६४२ वि० में भागवतदास छत्री ने सरस्वती प्रेस, काशी से एक प्रति छपवाई थी। इसे गोलावाली प्रति कहते हैं; क्योंकि उक्त प्रेस गोला दीना-नाथ, काशी के समीप था। देखिए ना० प्र० प० सं० १९९५, पृ० २८६।

से यमुना पार होने तक निषादराज साथ रहे। अब इनके भी लौटने पर अग्निदेव आए और सदा साथ रहे। इनकी विदाई नहीं कही गई है।[1] पंथ चलने में तीन व्यक्तियों का चलना निषिद्ध बतलाया गया है।

(३) कुछ लोग इन्हें 'चित्रकूट में निवास करनेवाला अगस्त्य ऋषि का शिष्य' मानते हैं।

(४) कुछ लोगों का कहना है कि स्वयं कामदनाथ चित्रकूट वन ही भगवान् से मिलने आया है—'चित्रकूट अस श्रवन सुनि जमुन तीर भगवान। वालि बिराजा वेष धरि गयो लेन अगवान॥'

(५) कुछ लोग इस तापस को स्वयं गोसाईं तुलसीदास मानते हैं। यमुना के दक्षिण कूल में राजापुर बसा है। जब भगवान् रामचंद्रजी वहाँ पहुँचे और 'सुनत तीर बासी नर नारी। धाए निज निज काज बिसारी' तो अपने निवासस्थान के इन लोगों के दौड़कर मिलते समय गोस्वामीजी ध्यानावस्थित हो गए और स्वयं भी मन से, अपनी जन्मभूमि में, यमुना-तट पर पहुँच गए। ऐसी अवस्था में जिस प्रकरण को छोड़कर गोसाईंजी प्रभु से (ध्यान में) मिलने गए थे, उसका याथातथ्य वर्णन हनुमान्‌जी ने लिख दिया "ताको गोसाईंजी ने नहीं मिटाया ताते। ग्रंथ में रहि गया है।"[1]

इस तापस प्रकरण के अप्रासंगिक होने में तो कोई संदेह ही नहीं तथा उपर्युक्त पाँचवें अनुमान के अनुसार यह गोस्वामीजी के हाथ का लेख भी नहीं। अतः इस अंश को निःसंकोच निकाल सकते हैं।

चाहे राजापुर की प्रति में गृहीत होने के कारण अथवा उस बीच की प्रति में गृहीत होने के कारण जिस पर से स्वयं राजापुर की प्रति उतारी गई है—क्योंकि जहाँ तक समझ में आता है राजापुर की प्रति गोस्वामीजी के हाथ की लिखी नहीं है[2]—यह 'तापस प्रकरण' सभी प्रामाणिक प्रतियों में

१—देखिए तुलसीकृत रामायण—अयोध्याकांड सटीक, टीकाकार हरिहरप्रसाद, प्रकाशक अविनाशीलाल, आर्य यंत्रालय, काशी, सं० १८३५, पृ० १०३।

२—इस संबंध में डाक्टर माताप्रसाद गुप्त का लेख देखिए, जिसमें इस विषय का विवेचन है—'हिंदुस्तानी,' अक्तूबर, १९३८; पृ० ३६७।

अपना लिया गया है। भाषा भी गोसाईंजी की भाषा से मिलती-जुलती है। और, इतने दिनों से प्रायः सभी प्रामाणिक कही जानेवाली प्रतियों में भी गृहीत होने के कारण अब तो यह प्रकरण प्राचीनता के बल पर चल रहा है।

पर यह बात नहीं कि कोई ऐसी पोथी हो नहीं जिसमें यह प्रकरण न हो। हस्तलिखित कोई प्राचीन पोथी तो अभी नहीं मिली पर ऐसी प्राचीन छपी पोथियाँ, जो हस्तलिखित की प्रामाणिकता रखती हैं, अवश्य देखने में आती हैं जिनमें यह प्रकरण नहीं है। जिन प्राचीन छपी पोथियों में यह प्रकरण नहीं है वे अवश्य ही प्रामाणिक हस्तलिखित पोथियों पर अवलंबित हैं।

'तापस प्रकरण' के ग्रहण करने से भी राजापुर की प्रति का गोस्वामीजी के हाथ का लिखा न होना सिद्ध होता है।

राजापुर की प्रति गोसाईंजी के हाथ की लिखी नहीं है, इसका एक प्रमाण यह भी है कि इसमें निम्नलिखित चौपाइयाँ कम हैं, जिनके अभाव में कथा-प्रसंग का तारतम्य नहीं बनता। सभी अन्य प्राचीन प्रामाणिक पोथियों में ये अर्धालियाँ हैं, राजापुर की प्रति में ही नहीं हैं,—

(१) सकल सुकृत मूरति नरनाहू। राम सुजस सुनि अतिहि उछाहू ॥२।१।२

(२) प्रमुदित मोहिं कहेउ गुरु आजू। रामहि राय देहु जुवराजू ॥२।४।३

(३) कीन्हेसि कठिन पढ़ाइ कुपाठू। फिरि न नवै जिमि उकठि कुकाठू ॥२।१९।४

(४) सहज सनेह बरनि नहिं जाई। पूँछी कुसल निकट बैठाई ॥२।८७।४

(५) राम सनेह सुधा जनु पागे। लोग बियोग बिषम बिष दागे ॥२।१८३।१

(६) कह गुरु बादि छोभ छल छाँड़ू। इहाँ कपट कर होइहि भाँड़ू ॥२।२१७।२

(७) ....। अरध तजहिं बुध सरबस जाता।

तुम्ह कानन गवनहु दोउ भाई। फेरिय लषन सहित रघुराई ॥

सुनि सुबचन हरषे दोउ भ्राता।

(८) ....। जनु महि करत जनक पहुनाई ॥

तब सब लोग नहाइ नहाई।...............२।२७८।५

(९) ....। रिषि धरि धीर जनक पहिं आए।

राम बचन गुरु नृपहिं सुनाए।..................२।२९०।५

निम्नलिखित पोथियों में 'तापस प्रकरण' नहीं है—

(१) सं० १९०५ वि० की छपी पोथी जिसे आगरे के पं० बद्रीलाल ने रामघाट, काशी के काश्मीरी यंत्रालय में छपवाया था (अयोध्याकांड पृ० ६१)

(२) सं० १९२० वि० की छपी पोथी जिसे श्री श्यामसुंदरदास सेन ने बड़ी बाजार, कलकत्ता के सुधावर्षण यंत्रालय में छपवाया था (अ० १९)।

(३) सं० १९२६ वि० (१८६९ ई०) की छपी पोथी जिसे पं० रामअसन मिश्र ने लाजरस मेडिकल हाल प्रेस, काशी में छपवाया था (अ०१५६)

(४) सं० १९३० वि० (अक्तूबर १८७३ ई०) की छपी पोथी जिसे मुंशी नवलकिशोर ने लखनऊ यंत्रालय में छपवाया था। (अ० २०१)

(५) सं० १९४० वि० की छपी पोथी जिसे शिवचरन ने भदैनी काशी के दिवाकर छापेखाने में छपवाया था। (अ० ५०)

(६) सं० १९४१ वि० (अप्रैल १८८४ ई०) की छपी पोथी जिसे मुंशी नवलकिशोर ने अपने कानपुर यंत्रालय में छपवाया था। (अ० ६७)

(७) सं० १९४५ वि० की छपी पोथी जिसे बापू हरसेठ देवलकर ने बंबई में अपने छापेखाने में छपवाया था। (अ० ५७)

(८) सं० १९४८ वि० (१८९१ ई०) का छपा ग्राउस का अँगरेजी अनुवाद जिसे उन्होंने सेमुअल के यूनियन प्रेस, कानपुर में छपवाया था। (अ० ६३)

(९) सं० १९५० वि० (१८९३ ई०) की छपी पोथी जिसे पं० गंगाराम मिश्र संगर ब्राह्मण कपूरथला ने मुंशी नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ में छपवाया (अ० २०२)।

(१०) सं० १९७० वि० (१९१३ ई०) की छपी पोथी जिसे श्रीमंत यादव शंकर जामदार ने मराठी अनुवाद सहित पूना के वैद्यक पत्रिका छापेखाने में छपवाया। (अ० ३८३)

(११) सं० १९८७ वि० की छपी पोथी जिसे श्री रामदास गौड़ ने हिंदी पुस्तक एजेंसी कलकत्ता से छपवाया था। (अ० २१२)

(१२) सं० १९९२ वि० (१९३५ ई०) की छपी पोथी (द्वितीय संस्करण) जिसे बाबा हरीदास ने लाला गौरीशंकर साह द्वारा शुक्ला प्रिंटिंग वर्क्स लखनऊ में छपवाया था। (भ० २८८)

(१३) एक छपी पोथी जिसे पं० हरिप्रकाश भागीरथ ने निर्णयसागर प्रेस, बंबई से छपवाया था। (भ० ६१)

इन भिन्न भिन्न स्थानों से प्रकाशित पोथियों को देखकर यह निश्चय-पूर्वक कहा जा सकता है कि प्राचीन हस्तलिखित ग्रंथों की एक शाखा तो अवश्य ही ऐसी रही है जिसमें तापस प्रकरण को स्थान नहीं था। इस अंश के प्रक्षिप्त मानने के पक्ष में निम्नलिखित तर्क भी उल्लेखनीय हैं,—

(क) यह प्रकरण सर्वथा अप्रासंगिक और असंगत है।

(ख) किसी पौराणिक कथा से इसकी पुष्टि नहीं होती।

(ग) संपूर्ण रामचरितमानस की ग्रंथ-संख्या मिलाते समय इसको ग्रहण करने से प्रामाणिक प्रतियों की ग्रंथ-संख्या में अंतर पड़ता है।

ग्राउस साहब का मत है कि या तो इसे स्वयं गोस्वामीजी ने बाद को जोड़ा हो या पहले लिखा हो और बाद को काट दिया हो, अथवा गोस्वामी जी के बाद किसी भक्त ने क्षेपक रूप से इसकी रचना की हो। इस अंत वाली उपपत्ति के पक्ष में निम्नलिखित बातें ध्यान देने योग्य हैं—

(१) तापस प्रकरण पूरे एक दोहे का है। इसमें एक दोहा और आठ अर्धालियाँ हैं। यह २।१०९।६ के बाद और २।११०।७ के पहले घुसा है। सभी प्रामाणिक प्रतियों के अनुसार ग्रंथ-संख्या मिलान करने पर विदित होगा कि अयोध्याकांड में 'तापस प्रकरण' को लेकर ३२६ दोहे हैं। पर जितनी भी प्रामाणिक प्रतियाँ हैं—सं० १७०४ की, सं० १७२१ की, सं० १७६२ की, छक्कनलाल की तथा भागवतदास की—सभी में अंतिम दोहे की संख्या ३२५ ही मिलती है और इन सब प्रतियों में दोहा-संख्या १९९ के आगे दोहे की संख्या नहीं लगाई गई है। यह कार्यवाही 'तापस प्रकरण' के आगे की गई है, पहले नहीं। यह देखते हुए कि 'तापस प्रकरण' का

एक दोहा पहले बढ़ा है, लोगों ने दोहा-संख्या १९९ के आगे दोहा-संख्या नहीं लगाई, जिसमें अंत में दोहासंख्या ३२५ ही उतरे।

(२) अयोध्या कांड में आठ अर्धालियों के बाद एक दोहा और हर पचीसवें दोहे के स्थान पर एक छंद और एक सोरठा है। ऐसा क्रम संपूर्ण अयोध्याकांड में दीख पड़ता है। पर 'तापस प्रकरण' के आ जाने से इस क्रम में व्यतिक्रम हो जाता है। 'तापस प्रकरण' के पहले तो उपर्युक्त नियम ठीक चला पर उसके आगे आनेवाला छंद, जो सं० १२५ पर पड़ना चाहिए था, सं० १२६ पर आता है।

(३) अयोध्याकांड का विषय-विभाजन[1] किया जाय तो प्रकट होगा कि अंत के १४६ दोहों में 'भरतचरित', मध्य के १४ दोहों में 'दशरथमरण' तथा प्रथम १४५ दोहों में 'श्रीरामचरित' कहा गया है। यह देखकर कि अयोध्याकांड में 'भरतचरित' १४६ दोहों में है और 'श्रीरामचरित' केवल १४५ दोहों में, भावुक भक्तों ने एक दोहा जोड़कर पूरा कर दिया, जिससे वह 'भरतचरित' से कम न रह जाय। एक दोहा जोड़ तो दिया, पर उन्होंने गोसाईंजी का आशय यह न समझा कि अयोध्याकांड में 'भरतचरित' की विशेषता है[2]। अयोध्याकांडवाली फलश्रुति में भी भरत ही की विशेषता है।

१—देखिए रामचरितमानस (विजयानंद त्रिपाठी) पृ० ३७५

२—भरत की महिमा ऐसी ही है—

भरत अमित महिमा सुनु रानी। जानहिं राम न सकहिं बखानी॥ रा०२।२८७।२

निखिल विश्व को 'बदर' तथा 'आमलक'वत् देखनेवाले कुलपूज्य गुरु वशिष्ठजी की मति भी भरतमहिमा का अवगाहन न कर सकी थी—

भरत महा महिमा जलरासी। मुनिमति तीर ठाढ़ि अबला सी॥

गा चह पार जतन बहु हेरा। पावति नाव न बोहित बेरा॥रा०२।२५५।२

इसके अतिरिक्त भरतचरित का प्रसंग आरण्यकांड के ६ दोहे तक चला गया है; अतएव अयोध्याकांड की प्राचीन प्रामाणिक पोथियों में इति नहीं लगाई गई है।

सिय राम प्रेम पियूष पूरन होत जनमु न भरत को।
मुनि मन अगम जम नियम सम दम बिषम ब्रत आचरत को।
दुख दाह दारिद दंभ दूषन सुजस मिस अपहरत को।
कलिकाल तुलसी से सठन्हि हठि राम सनमुख करत को।

भरत-चरित करि नेम तुलसी जो सादर सुनहिं।
सीय राम पद प्रेम अवसि होइ भव-रस-बिरति॥

(४) इस तापस का गोस्वामी तुलसीदास होना सबसे अधिक संभावित है, क्योंकि अन्य कोई—अग्नि, चित्रकूट, अगस्त्य-शिष्य—मानने में उसकी पुष्टि किसी पौराणिक कथा से नहीं होती। पर तापस को गोसाईंजी मानने में खटकनेवाली बात यह है कि (तापस-वेष में) गोसाईंजी सबसे—राम से, सीता से, लक्ष्मण से—तो स्वयं मिले और निषादराज से, जो इन लोगों के साथ थे, इस प्रकार मिले कि पहले निषाद ने दंडवत् किया, तब राम-सनेही जानकर गोसाईंजी उनसे मिले—'कीन्ह निषाद दंडवत तेही। मिलेउ मुदित लखि राम-सनेही।' इस अर्धाली से यह लक्षित होता है कि यदि निषाद रामसनेही न होता तो केवल रामचंद्रजी के साथ होने से गोस्वामीजी का ब्राह्मण-तनु नीच निषाद को स्पर्श करने में सकुचता। प्रचलित सामाजिक भावना भी यही हो सकती है। पर ऐसा करना तुलसी-स्वभाव के सर्वथा प्रतिकूल है—

जड़ चेतन जग जीव जत सकल राममय जानि।
बंदौं सब के पद-कमल सदा जोरि जुग पानि॥
देव दनुज नर नाग खग प्रेत पितर गंधर्व।
बंदौं किन्नर रजनिचर कृपा करहु अब सर्व॥

आकर चारि लाख चौरासी। जाति जीव जल नभ थल बासी।
सीयराममय सब जग जानी। करौं प्रनाम जोरि जुग पानी॥ रा० १।७

तुलसी जाके बदन तें धोखेहु निकसत राम।
ताके पग की पगतरी मेरे तनु को चाम॥ बै० ३७

आपु आपुने ते अधिक जेहि प्रिय सीता राम।
ताके पग की पानही तुलसी के तनु चाम॥ दो०

अब तनिक सोचने की बात है कि जिसका स्वाभिमान यह कहकर बिलकुल गल गया था, वह निषाद से मिलने के समय पहले उससे दंडवत् कराने के लिये कब जीवित रहा होगा। इसके अतिरिक्त 'तेजपुंज' 'मिलेउ मुदित' प्रभृति अहंमन्यता-सूचक शब्द गोसाईंजी अपने लिये न लिखते।

(५) इस प्रकरण के काव्यांग पर विचार करने से प्रकट होगा कि "राम सप्रेम पुलकि उर लावा। परम रंक जनु पारस पावा।"—में प्रक्रम-भंग दोष है। 'रंक' और 'पारस' क्रमशः राम और तापस दोनों पक्ष में लग सकता है। इस अर्धाली का सहज स्वाभाविक अर्थ करने पर 'रंक' राम पक्ष में शब्द-संगति के अनुकूल पड़ता है, पर भगवान् को कभी दरिद्र की उपमा नहीं दी जा सकती। यदि कहें कि भगवान् भक्त के प्रेमवश उससे मिलने के लिये ऐसे लालायित हो रहे थे जैसे दरिद्र दाम के लिये होता है तो इसमें बड़ा भारी दोष है। भक्त 'पारस' कदापि नहीं हो सकता; यह गुण तो परमात्मा का ही है, जो 'गुन अवगुन नहिं चितवत कंचन करत खरो।' गुसाईंजी ने अन्यत्र भी सर्वत्र भक्त को वा भगवान् के इच्छुक को ही दरिद्र और रंक की उपमा दी है और यही उचित है—

सुख बिदेह कर बरनि न जाई। जनम दरिद्र मनहुँ निधि पाई॥१।३०७।४॥

दिए दान बिप्रन्ह बिपुल पूजि गनेस पुरारि।
प्रमुदित परम दरिद्र जनु पाइ पदारथ चारि॥ १।३४५

प्रेम प्रमोद न कछु कहि जाई। रंक धनद पदबी जनु पाई॥२।५१।५
बरनि न जाइ दसा तिन्ह केरी। लहि जनु रंकन्हि सुरमनि ढेरी॥२।११३।५
भईं मुदित सब ग्रामबधूटी। रंकन्हि राय रासि जनु लूटी॥२।११६।८
कंद मूल फल भरि भरि दोना। चले रंक जनु लूटन सोना॥२।१३४।२
हरषहिं निरखि राम पद अंका। मानहु पारस पाएउ रंका॥२।२३७।२
गहि पद लगे सुमित्रा अंका। जनु संपति भेंटी अति रंका॥२।२४४।३

कामिहिं नारि पियारि जिमि लोभिहिं जिमि प्रिय दाम।
तिमि रघुनाथ निरंतर प्रिय लागहु मोहिं राम ॥७।१३०

भगवान् दरिद्र क्यों होने लगे ? यह तो 'काम, कामी' का ही धर्म है; चाहे वह 'काम' भगवान् के लिये हो चाहे किसी सांसारिक भोग के लिये।

आगे एक परिशिष्ट में काशिराज की प्रति से रामचरितमानस के प्राचीन क्षेपकों को क्रमानुसार एकत्र उपस्थित किया जाता है। उन अंशों के क्षेपक मानने का मुख्य कारण यह है कि बाद की प्रतियों—सं० १७२१ तथा सं० १७६२ की प्रतियों—में उनका अभाव है। भागवतदासजी ने भी उन्हें ग्रहण नहीं किया है और जिन भक्त-परंपराओं में रामचरितमानस की प्रामाणिक वाचना चली आती है, उनमें भी उनका अभाव है। उन अंशों में से केवल 'तापस प्रकरण' ही ऐसा है जो कतिपय प्रामाणिक प्रतियों में गृहीत है।

परिशिष्ट

बालकांड के क्षेपक

१।३६१।४ के आगे—सुनु गाइ कहहिं गिरीस कन्या धन्य अधिकारी सही।
नित प्रीति नूतन सुनत हरिगुन भक्ति अनुपम तैं लही॥
रघुबीर पद अनुराग जल लोभागि बेगि बुझावई।
येह जानि तुलसीदास मन क्रम बचन हरि गुन गावई॥
कठिन काल मल-ग्रसित मन साधन कछु न होइ।
यह बिचारि बिस्वास करि हरि सुमिरै बुधि सोइ॥
मन हरिपद अनुरागु, करहि त्यागु नाना कपट।
महा मोह निसि जागु, सोवत बीते काल बहु॥

अयोध्याकांड के क्षेपक

२।१०६।६ के आगे—तेहि अवसर एकु तापसु आवा। तेज पुंज लघुबयस सुहावा॥
कबि अलखित गति बेषु बिरागी। मन क्रम बचन राम अनुरागी॥

सजल नयन तन पुलकि निज, इष्ट देव पहिचानि ।
परेउ दंड जिमि धरनितल दसा न जाइ बखानि ।।
राम सप्रेम पुलकि उर लावा । परम रंक जनु पारसु पावा ।।
मनहु प्रेमु परमारथु दोऊ । मिलत धरें तनु कह सबु कोऊ ।।
बहुरि लखन पायन्ह सोइ लागा । लीन्ह उठाइ उमगि अनुरागा
पुनि सिय चरन धूरि धरि सीसा । जननि जानि सिसु दीन्हि असीसा
कीन्ह निषाद दंडवत तेही । मिलेउ मुदित लखि राम सनेही ।।
पिअत नयन पुट रूपु पियूषा । मुदित सु असनु पाइ जिमि भूखा

आरण्यकांड के क्षेपक

३।०।८ के आगे-बिनु पराध प्रभु हतइ न काहू । अवसर परे ग्रसइ ससि राहू
जब प्रभु लीन्ह सीक धनु बाना । क्रोध जानि भा अनल समाना
३।१।८ के आगे-जिमि जिमि भाजत सक्रसुत व्याकुल अति दुख दीन ।।
तिमि तिमि धावत राम सर पाछे परम प्रवीन ।।
बचहिं उरग बरु ग्रसे खगेसा । रघुपति सर छुटि बचब अँदेसा
३।१।६ के आगे-दूरहि ते कहि प्रभु प्रभुताई । भजे जात बहु बिधि समुझाई
३।४। के आगे-जनम जनम प्रभु तव पद कंजा । बाढ़ौ प्रेम चकोर जिमि चंदा
देखि राम मुनि बिनय प्रनामा । बिबिध भाँति पाएउ बिश्रामा ।
३।४।१ के आगे-जे सिय सकल लोक सुखदाता । अखिल लोक ब्रह्मांड कि माता
तेउ पाइ मुनिबर मुनि भामिनि । सुखी भई कुमुदिनि जिमि जामिनि
३।४।३ के आगे-जाहि निरखि दुख दूरि पराहीं । गरुड जानि जिमि पन्नग जाहीं
ऐसे बसन बिचित्र सुठि दिए सीय कहुँ आनि ।
सनमानी प्रिय बचन कहि प्रीति न जाइ बखानि ।।
३।४।१२ के आगे-उत्तम मध्यम नीच लघु सकल कहउ समुझाइ ।
आगे सुनहिं ते भव तरहिं सुनहु सीय चित लाइ ।।
३।६ के आगे-मुनिहु कि अस्तुति कीन्ह प्रभु दीन्ह सुभग बरदान ।
सुमन वृष्टि नभ संकुल जय जय कृपानिधान ।।
३।६।५ के आगे-आश्रम बिपुल देखि मग माहीं । देवसदन तेहि पटतर नाहीं ।
बहु तड़ाग सुंदर अवराई । भाँति भाँति सब मुनिन्ह लगाई ।।

तेहि दिन तहँ प्रभु कीन्ह निवासा। सकल मुनिन्ह मिलि कीन्ह सुपासा
आनि सुआसन मुदित मन पूजि पहुनई कीन्ह।
कंद मूल फल अमिअ सम आनि राम कहुँ दीन्ह॥
अनुज सीय सह भोजन कीन्हा। जो जेहि भाव सुभग बर दीन्हा।
होत प्रभात मुनिन्ह सिरु नावा। आसिरबाद सबहि सन पावा॥
सुमिरि उमा सिव सिद्धि गनेसा। पुनि प्रभु चले सुनहु उरगेसा।
बन अनेक सुंदर गिरि नाना। नाघत चले जाहिं भगवाना॥

३।६।५ के आगे—......................... । गर्जत घोर कठोर रिसाता।
रूप भयंकर मानहु काला। बेगवंत धाएउ जिमि व्याला।
गगन देव मुनि किन्नर नाना। तेहि छन हृदय हारि कछु माना।
तुरतहि सो सीतहि लै चलेऊ। राम हृदय कछु बिस्मै भयेऊ।
समुझा हृदय कैकई करनी। कहा अनुज सन बहु बिधि बरनी।
बहुरि लषन रघुबरहि प्रबोधा। पाँच बान छाँड़े करि क्रोधा।
भये क्रुद्ध लषन संधानि धनु सर मारि तेहि व्याकुल कियो।
पुनि उठा निसिचर राखि सीतहिं सूल लेइ छावत भयो।
जनु कालदंड कराल धावा बिकल सब खग मृग भए।
धनु तानि श्री रघुबंश मनि पुनि मारि तन झर्झर किए।
बहुरि एक सर मारा परा धरनि धुनि माथ।
उठेउ प्रबल पुनि गरजेउ चलेउ जहाँ रघुनाथ॥
ऐसेइ कहत निसाचर धावा। अब नहिं बचहु तुम्हहिं मैं खावा।
आव प्रबल एहि बिधि जनु भूधर। होइहि काह कहहिं व्याकुल सुर
तासु तेज सत मरुत समाना। टूटहिं तरु उड़ाहिं पाषाना।
जीव जंतु जहँ लगि रहे जेते। व्याकुल भाजि चले तहँ तेते।
उरग समान जोरि सर साता।...................................

३।६।७ के आगे—तासु अस्थि गाड़ेउ प्रभु धरनी। देवन्ह मुदित दुंदुभी हनी।
सीता आइ चरन लपटानी। अनुज सहित तब चले भवानी॥
इहाँ सक्र जहँ मुनि सरभंगा। आएउ सकल देव निज संगा।
गए कहन प्रभु देन सिखावन। दिसि बल भेद बसत जहँ रावन

सुरपति संसय तम सघन रघुपति तेज दिनेस।
रावन जीवन निसि समन बीते छुटहि कलेस॥
सुनासीर प्रभु तेहि छन देखा। तेजनिधान सुभ्र अति वेषा।
तुरग चारि बल मरुत समाना। रथ रबि सम नहिं जाइ बखाना।
छिति न परस अंतरहित रहई। स्वेत छत्र चामर सिर ढरई।
अनुजहिं प्रियहिं कहा समुझाई। सुरपति महिमा गुन प्रभुताई।
जेहि कारन बासव तहँ आए। सो कछु बचन कहइ नहिं पाए।
बीचहिं सुनि आइब प्रभु केरा। कहि सारथिहि तुरत रथ फेरा।
दूरिहि ते करि प्रभुहि प्रनामा। हरषि सुरेस गएउ निज धामा।
३।३का८ के आगे–सोउ प्रिय अति पातकी जिन्ह कबहुँ प्रभु सुमिरन कर्यो।
ते आजु मैं निज नयन देखिहौं पुरित पुलकित हिय भर्यो।
जे पद सरोज अनेक मुनि कर ध्यान कबहुँक आवहीं।
ते राम श्रीरघुवंश मनि प्रभु प्रेम तें सुख पावहीं।
पन्नगारि सुनु प्रेम सम भजन न दूसर आन।
यह बिचारि मुनि पुनि पुनि करत राम गुन गान॥
३।३का१६ के आगे–राम सुसाहेब संत प्रिय सेवक दुख दारिद दवन।
मुनि सन प्रभु कह आइ उठु उठु द्विज मम प्रान सम॥
३।४का२० के आगे–माया बस जग जीव रहहि बिवस संतत मगन।
तिमि लागहु मोहिं प्रीय करुनाकर सुंदर सुखद॥
३।४का२१ के आगे–रामभगति तजि चह कल्याना। सो नर अधम सृगाल समाना
३।५का१ के आगे–मुनि प्रनाम करि कह कर जोरी। सुनहु नाथ कछु बिनती मोरी
३।५का५ के आगे–आश्रम देखि महा सुचि सुंदर। सरित सरोवर हरषित भूधर
बनचर जलचर जीव जहीं ते। बैर न करहिं प्रीति सबहीं ते।
तरुवर बिबिध बिहंगमय बोलत बिबिध प्रकार।
बसहिं सिद्ध मुनि तप करहिं महिमा गुन आगार।
३।६क। के आगे–पाइ सुथल जल हरषित मीना। पारस पाइ सुखी जिमि दीना।
प्रभुहिं निरखि सुख भा एहि भाँती। चातक जिमि पाए जल स्वाती
३।६का३ के आगे–द्विजद्रोही न बचहिं मुनिराई। जिमि पंकज बन हिमि रितु पाई

३।६का।५के आगे-भृकुटी निरखत नाथ तव रहत सदा पद कमल तर
जिन डारे निज उदर महँ बिबिध बिधाता सिद्ध हर
अति कराल सब पर जग जाना। औरो कहौ सुनिअ भगवाना
३।६का।१३के आगे-जेहि जीव पर तव माया रहत तुम्हहिं संतत बिबस।
तिन्हहु कि महिम न जान सेवक तुम्ह कहँ प्रान प्रिय।
३।६का।१५के आगे-गोदावरी नदी तहँ बहई। चारिहु जुग प्रसिद्ध सो अहई
३।६का।१८के आगे-दिव्य लता द्रुम प्रभु मन भाए। निरखि राम तेउ भए सुहाए
लषन राम सिय चरन निहारी। कानन अघ गा भा सुखकारी
३।१०।१के आगे-नाथ सुने गत मम संदेहा। भएउ ज्ञान उपजेउ नव नेहा
अनुज बचन सुनि प्रभु मन भाए। हरषि राम निज हृदय लगाए
३।१०।६के आगे-अधम निसाचरि कुटिल अति चली करन उपहास।
सुन खगेस भावी प्रबल भा चह निसिचर नास।
३।१०।१४के आगे-केहरि सम नहिं करिबर लवा कि बाज समान।
प्रभु सेवक इमि जानहु मानहु बचन प्रमान।
३।१०।१६के आगे-बिथुरे केस रदन बिकराला। भृकुटी कुटिल करन लगि गाला
३।१०।२०के आगे-अनुज राम मन की गति जानी। उठे रिसाइ तब सुनहु भवानी
३।११।१के आगे-स्याम घटा देखत घन केरी। तहँ बासव धनु मनहु उयेरी
३।११।३के आगे-चौदह सहस सुभट सँग लीन्हे। जिन्ह सपनेहु रन पीठि न दीन्हे
३।११।६के आगे-निज निज बल सब मिलि कहहिं एकहिं एक सुनाइ।
बाजन लाग जुझाऊ हरष न हृदय समाइ॥
३।११।१०के आगे-कोउ कह सुनहु सत्य हम कहहीं। कानन फिरहिं बीर कोउ अहहीं
एकैं कहा मष्ट भै रहहू। खर के आगे अस जनि कहहू।
बहु बिधि कहत बचन रनधीरा। आए सकल जहाँ रघुबीरा।
३।१२के आगे-घेरि रहे निसिचर समुदाई। दंडक खग मृग चले पराई।
३।१२।७के आगे-भए काल बस मूढ़ सब जानहिं नहिं रघुबीर।
मसक फूँक कि मेरु डर सुनहु गरुड़ मतिधीर॥
३।१२।८के आगे-आजु भयउ बड़ भाग हमारा। तोहरे प्रभु अस कीन्ह बिचारा

३।१३।३के आगे-एक एक को न सभार। करै तात भ्रात पुकार।
कोउ कहै खर का कीन्ह। जो जुद्ध इन्ह सन लीन्ह।
जाको बान अतिहि कराल। ग्रसै आइ मानहु काल।
३।१३।५के आगे-छमा एक निज प्रभुहिं बस पुनि उनके बड़ भाग।
तरन चहहिं प्रभु सर लगे बिना जोग जप जाग॥
३।१५।८के आगे-अति सुकुमारि पियारि पटतर जोगु न आहि कोउ।
मैं मन दीख बिचारि जहाँ रहै तेहि सम न कोउ॥
अजहुँ जाइ देखब तुम्ह जबहीं। होइहहु बिकल तासु बस तबहीं
जीवन मुक्त लोक बस ताके। दसमुख सुनु सुंदरि असि ताके
३।१ ।१०के आगे-बिनु पराध असि हाल हमारी। अपराधी किमि बचिहि सुरारी
३।१५।१२के आगे-भयेउ सोच मन नहिं बिश्रामा। बीतहिं पल मानउ सत जामा
३।१६।७के आगे-रथ अनूप जोरे खर चारी। बेगवंत इमि जिम उरगारी।
छं०-उरगारि सम अति बेगु बरनत जाइ नहिं उपमा कहीं।
सिर छत्र सोभित स्यामघन जनु चँवर सेत बिराजहीं
एहि भाँति नाघत सरित सैल अनेक बापी सोहहीं
बन बाग उपवन बाटिका सुचि नगर मुनि मन मोहहीं।
बहु तड़ाग सुचि बिहग मृग बोलत बिबिध प्रकार
एहि बिधि आएउ सिंधु तट सत जोजन बिस्तार॥
सुंदर जीव बिबिध बिधि जाती। करहिं कोलाहल दिन अरु राती
कूदहिं ते गर्जहिं घन नाईं। महाबली बल बरनि न जाई।
कनक बालु सुंदर सुखदाई। बैठहिं सकल जंतु तहँ जाई॥
तेहिपर दिव्य लता द्रुम लागे। जेहि देखत मुनि मन अनुरागे।
गुहा बिबिध बिधि रहहिं बनाई। बरनत सारद मति सकुचाई
चाहिय जहाँ रिषिन्ह का बासा। तहाँ निसाचर करहिं निवासा
दसमुख देखि सकल सकुचाने। जे जड़ जीव सजीव पराने॥
३।१६के आगे-रा अस नाम सुनत दसकंधर। रहत प्रान नहिं मम उर अंतर।
३।२०।के आगे-सीता लषन सहित रघुराई। जेहि बन बसहिं मुनिन्ह सुखदाई।

३।२०।६के आगे-अस कहि चले तहाँ प्रभु जहाँ कपट मृग नीच।
देव हरष बिसमउ बिबस चातक बरषा बीच ।।

३।२१।४के आगे-सौंपि गए मोहि रघुपति थाती। जौ तजि जाउँ तोष नहिं छाती
यह जिय जानि सुनहु मम माता। पूछत कहब कवनि मैं बाता ।।

३।२१।५के आगे-चहुँ दिसि रेख खँचाइ अहीसा। बारंबार नाइ पद सीसा।

३।२१।६के आगे-चितवहिं लषन सीय फिरि कैसे। तजत बच्छ निज मातुहिं जैसे
एक डर डरपत राम के दूसरि सीय अकेलि।
लषन तेज तन हत भयो जिमि डाढ़ी दव बेलि ।।

३।२१।१०के आगे-करि अनेक बिधि छल चतुराई। माँगेउ भीख दसानन जाई
अतिथि जानि सिय कंद मूल फल। देन लगी तेहि कीन्ह बहुरि छल
कह दसमुख सुनु सुंदरि बानी। बाँधी भीख न लेउँ सयानी।
बिधि गति बाम काल कठिनाई। रेख नाँघि सिय बाहर आई।
बिस्वभरनि अघ-दल-दलनि करनि सकल सुर काज।
समुझि परी नहिं समय तेहि बंचक जती समाज।

३।२१।१५के आगे-वायस कर चह खगपति समता। सिंधु समान होहिं किमि सरिता
खरि कि होइ सुरधेनु समाना। जाहि भवन निज सुनु अज्ञाना

३।२२।३के आगे-कैकेइ के मन जो कछु रहेऊ। सो बिधि आजु मोहि दुख दयेऊ
पंचवटी के खग मृग जाती। दुखी भए जलचर बहु भाँती।

३।२२।५के आगे-बहु बिधि करत बिलाप नभ लिए जात दससीस।
डरत न खल बर पाइ मल जो दीन्हेउ अज ईस ।।

३।२२।७के आगे-अहह प्रथम तन मम बल नाहीं। तदपि जाइ देखौं बल ताही

३।२२।१४के आगे-मम भुजबल नहिं जानत आवत तपन सहाइ।
समर चढ़इ तो येहि हतौं जियत न निज थल जाइ ।।

३।२२।१६के आगे-दसमुख उठि कृत सर संधाना। गीध आइ काटेउ धनु बाना

३।२२।२०के आगे-जेहि रावन निज बस किए मुनिगन सिद्ध सुरेस।
तेहि रावन सन समर कर धीर बीर गिद्धेस ।।
मुरुछ भए पुनि उठि सो धावा। मरै गीध सनमुख नहिं आवा।
कीन्हेसि बहु जब जुद्ध खगेसा। थकित भयेउ तब जरठ गिधेसा ।।

३।२२।२२के आगे–मन महँ गीध परम सुख माना । रामकाज मम लागेउ प्राना
३।२३क।के आगे–उहाँ बिधाता मन अनुमाना । सुरपति बोलि मंत्र अस ठाना ।
तात जनकतनया पहिं जाहू । सुधि न पाव जिमि निसिचरनाहू
अस कहि बिधि सुंदर हबि आनी । सौंपि बहुरि बोले मृदु बानी
एहि भच्छन कृत छुधा न प्यासा । बरष सहस यह संसय नासा
सो प्रसाद लेइ आयसु पाई । चलेउ हृदय सुमिरत रघुराई ।
कछु बासव माया निज मोई । रच्छक रहे गए तहँ सोई ।
तदपि डरत सीता पहिं आएउ । करि प्रनाम निज नाम सुनाएउ
निश्चय जानि सुरेस सुजाना । पिता जनक दसरथ सम माना
करि परितोष दूरि करि सोका । हबिष खवाइ गएउ निज लोका
३।२४।३के आगे–अहह तात भल कीन्हेहु नाहीं । सीय बिना मम जीवन नाहीं
एहि ते कवनि बिपति बड़ि भाई । छाड़ेउ सीय काननहिं आई ॥
३।२४।६के आगे–कानन रहेउ तड़ाग इव चक चकई सिय राम ।
रावन निसि बिछुरन भएउ सुख बीते चहुँ जाम ॥
पर-दुख-हरन सो कस दुख ताही । भा बिषाद तिन्हहूँ मन माहीं
३।२४।१५के आगे–फनि मनिहीन मीन जिमि त्यागत शीतल बारि ।
तिमि व्याकुल भए लषन तहँ रघुबर दसा निहारि ॥
३।२४।१७के आगे–सर बर अमित नदी गिरि खोहा । बहु बिधि लषन राम तहँ जोहा
सोच हृदय कछु कहि नहिं आवा । टूट धनुष सर आगे पावा ।
कहुँ कहुँ सोनित देखिअ कैसे । सावन जल भर डाबर जैसे ।
कहत राम लछिमनहिं बुझाई । काहू जुद्ध कीन्ह एहि ठाईं ।
३।२६।६के आगे–सब प्रकार तव भाग बड़ मम चरनन्हि अनुराग ।
तव महिमा जेहि उर बसिहि तासु परम जग भाग ॥
बचन सुनत सबरी हरषाई । पुनि बोले प्रभु गिरा सुहाई ॥
३।२६।१०के आगे–............। मुनिबर बिपुल रहे जहँ छाई ।
रिषि मतंग महिमा गुन भारी । जीव चराचर रहत सुखारी ।
बैर न कर काहू सन कोऊ । जा सन बैर प्रीति कर सोऊ ।

सिखर सुहावन कानन फूले। खग मृग जीव जंतु अनुकूले।
करहु सफल श्रम सब कर जाई।............

किष्किधाकांड के क्षेपक

४।६।२६ के आगे–सोइ रघुबीर हृदय महँ आनहु। मोहहि छोड़ि कहा मम मानहु॥
४।७।१ के आगे–बालि देखि सुग्रीवहि ठाढ़ा। हृदय क्रोध बहु बिधि पुनि बाढ़ा
४।१०।२ के आगे–पुनि पुनि तासु सीस उर धरई। बदन बिलोकि हृदय मों हनई
मै पति तुम्हहिं बहुत समुझावा। कालबस्य कछु मनहि न आवा
अंगद कहँ कछु कहइ न पाएहु। बीचहि सुरपुर प्रान पठाएहु॥
४।२६।८ के आगे–जो रघुपति चरनन चित लावै। तेहि सम आन न धन्य कहावै
४।२७।३ के आगे–जिमि जिमि मैं रबि निकट उड़ाऊँ। तिमि तिमि मैं बिकल होइ जाऊँ
४।२७।६ के आगे–यह कहि मुनि आश्रम निज गयऊ। तेहि छिन हृदय ज्ञान कछु भयऊ
सदा राम कर सुमिरन करऊँ। एहि बिधि मगु जोअत मैं रहऊँ।
४।२८।१ के आगे–जो कछु करइ राम कर काजू। तेहि सम धन्य आन नहिं आजू

सुंदरकांड के क्षेपक

५।०।६ के आगे–सिंधु बचन उर आनि तुरत उठेउ मैनाक तब।
कपि कहुँ कीन्ह प्रनाम पुलकित तनु कर जोरि कर॥

लंकाकांड के क्षेपक

६।१०७।६ के आगे– संग लिए त्रिजटा निसिचरी। चली राम पहिं सुमिरत हरी॥

चयन

रावण की लंका की ठीक स्थिति

'पूना ओरियंटलिस्ट' ग्रंथ ६, अंक १-२ में उसके संपादक ने जस्टिस परमशिव ऐय्यर की पुस्तक 'रामायण ऐंड लंका' पर एक उपादेय टिप्पणी लिखी है। कुछ संक्षिप्त रूप में उसका अनुवाद यह है:—

वाल्मीकीय रामायण में वर्णित रावण की लंका की भौगोलिक स्थिति के विषय में विद्वानों में बहुत मतभेद रहा है। साधारण जन के मन में लंका के संबंध में यह बैठा हुआ और गहराई से जमा हुआ है कि वह सीलोन है। दूसरे स्थल—जैसे जनस्थान, पंपासर, ऋष्यमूक और प्रस्रवण पर्वत, किष्किंधा, महेंद्रद्वार, लंका के चारों ओर का समुद्र—मद्रास प्रांत में दिखाए जाते हैं, यद्यपि उनकी ठीक स्थितियों के संबंध में समीक्षक विद्वानों को बहुत संदेह रहा है। इंदौर के सरदार किबे ने मध्यप्रांत में अमरकंटक पर्वत पर लंका की स्थिति के विषय में नई स्थापना प्रस्तुत की है। परंतु स्वर्गीय रायबहादुर हीरालाल और प्रो० दा० रा० भांडारकर ने 'झा कमेमोरेशन वाल्यूम' में लंका और दंडकारण्य की स्थिति के विषय में अपने लेखों के द्वारा इस स्थापना का विरोध किया है और दोनों ने सरदार किबे की लंका के संबंध में संदेह प्रकट किया है; क्योंकि चारों ओर की भौगोलिक स्थितियाँ रामायण के पाठ से नहीं मिलतीं।

बंगलोर के जस्टिस परमशिव ऐय्यर महाशय ने १९४० में 'रामायण ऐंड लंका' (रामायण और लंका) पर एक पुस्तक प्रकाशित की है, जिसमें उन्होंने उपर्युक्त स्थानों को—जैसे जनस्थान, पंपासर, सुग्रीव की गुफा के साथ ऋष्यमूक, प्रस्रवण पर्वत जहाँ लंका की चढ़ाई के पूर्व श्रीराम ने वर्षाऋतु के चार मास बिताए थे, महेंद्रद्वार, लंका और त्रिकूट पर्वत तथा त्रिकूट पर्वत के पास सुवेल पर्वत—भूपृष्ठ के मानचित्रों और वाल्मीकीय

रामायण के पाठ से ऐसा ठीक निश्चित किया है कि उनकी स्थापना का निराकरण कठिन है। जबलपुर-वासियों के सौभाग्य से ये सभी स्थान जबलपुर के आसपास हैं। निस्संदेह यह उनके लिये बड़े गर्व का कारण है।

अपितु, उपर्युक्त स्थानों को मार्च १९४१ के तीसरे सप्ताह में पूना ओरिएंटल बुक एजेंसी के प्रबंधक-अधिकारी और 'पूना ओरिएंटलिस्ट' के सह-संपादक डा० एन० जी० सरदेसाई, एल० एम० एस० ने स्वयं देखा और परखा है और उनके तथा हमारे लिये भी यह बड़े आश्चर्य की बात है कि उक्त स्थान वाल्मीकीय रामायण में वर्णित स्थानों से बहुत कुछ मिलते हैं।*

× × × ×

जो भी हो, जस्टिस परमशिव ऐय्यर महाशय की पुस्तक निस्संदेह विचारोत्तेजक है और डा० एन० जी० सरदेसाई द्वारा कम से कम तीन स्थानों की ठीक पहचान मान्यता से प्रमाणित करती है कि ये रामायणकाल के ही हैं। अब यह सभी शोधक विद्वानों का और विशेषत: जबलपुर के विद्वानों का दायित्व है कि इन स्थानों के संबंध में आगे शोध करें और जस्टिस ऐय्यर के आविष्कार की यथार्थता के संबंध में जनता के समाधान के लिये अधिकाधिक प्रमाण प्राप्त करें।

—कृ।

---

* इसके आगे लेखक ने उक्त स्थानों का संक्षिप्त परिचय दिया है जिसे हम स्थानाभाव के कारण रख नहीं सके हैं। पाठक उसे मूल में ही देखें।

—सं०।

समीक्षा

मन के भेद—लेखक प्रो० राजाराम शास्त्री, काशी विद्यापीठ; प्रकाशक अभिनव भारती ग्रंथ-माला, १७१ ए०, हरिसन रोड, कलकत्ता; मूल्य १।)।

'मन के भेद' नामक पुस्तक, जिसका नाम वस्तुतः 'वैयक्तिक मनोविज्ञान' अथवा 'एडलर का मनोविज्ञान' होना चाहिए था, लिखकर काशी-विद्यापीठ के मनोविज्ञान के अध्यापक प्रो० राजाराम शास्त्री ने अँगरेजी भाषा से अपरिचित हिंदी भाषा जाननेवालों का बहुत उपकार किया है। जहाँ तक मुझे ज्ञात है, एडलर महोदय के मनोवैज्ञानिक विचारों पर, जिनका प्रभाव आजकल शिक्षा-विज्ञान पर बहुत पड़ रहा है, हिंदी भाषा में, इस पुस्तक के अतिरिक्त अभी तक कोई और पुस्तक नहीं प्रकाशित हुई है। इसलिये लेखक और प्रकाशक दोनों ही हिंदी-भाषी ज्ञानपिपासुओं की ओर से धन्यवाद के पात्र हैं। प्रो० राजाराम शास्त्री ने 'वैयक्तिक मनोविज्ञान' के नाम से प्रसिद्ध महत्त्वपूर्ण मनोवैज्ञानिक विचारों को, जिनको एडलर साहब ने (जो योरप के तीन सर्वथा नूतन और मौलिक मनोवैज्ञानिक संप्रदाय के प्रधानतम आचार्यों—फ्रायड-एडलर-युंग—में से एक थे) अपने जीवन भर के व्यावहारिक अनुभव और प्रगाढ़ चिंतन द्वारा खोज निकाला था, सरल और आकर्षक रीति से पाठकों के समक्ष रखने का प्रयत्न किया है। साथ में ही सर्वप्रथम पाठ में उन्होंने 'चित्त-विश्लेषण' का—जिस नाम से फ्रायड-एडलर-युंग का नया संप्रदाय सामान्यतः पुकारा जाता है और जो नाम विशेषतः मौलिक आचार्य स्वर्गीय डा० सिगमंड फ्रायड के विचारों का है—इतिहास देकर पुस्तक की उपयोगिता को बढ़ा दिया है। बिना डा० फ्रायड के विचारों को समझे एडलर और युंग के विचारों का समझना कठिन है। एडलर और युंग दोनों ही फ्रायड महोदय के शिष्य तथा प्रधान सहयोगी रह चुके हैं और दोनों ही के विशेष विचारों का प्रधान आधार फ्रायड के वे सिद्धांत हैं जिनको उन्होंने सर्वप्रथम अपने विस्तृत अनुभवों और गहरे

विचारों द्वारा जाना था। वास्तव में प्रस्तुत पुस्तक 'मन के भेद' नामक ग्रंथ का केवल एक मध्यम प्रकरण ही कही जा सकती है। 'मन के भेद' नामक पुस्तक में तीनों आचार्यों के सिद्धांतों का विस्तृत वर्णन होना आवश्यक था। प्रो० शास्त्री ने केवल एडलर महोदय के विचारों पर पुस्तक लिखकर और उसका नाम 'मन के भेद' रखकर एडलर महोदय को उचित से अधिक महत्त्व दे दिया है। 'चित्त विश्लेषण का इतिहास' बहुत अच्छी भाँति लिखा जाने पर भी इस पुस्तक का एक पाठ मात्र है।

लेखक ने वैयक्तिक मनोविज्ञान को इन विषयों में विभक्त करके उसका विवेचन किया है :—मनोविज्ञान का जीवन में प्रयोग, आत्मग्लानि का व्यावहारिक निरूपण, आत्मश्लाघा, जीवन-प्रणाली, प्राचीन स्मृतियाँ, मनोवृत्तियाँ और चेष्टाएँ, स्वप्न और उनकी व्याख्या, बच्चों की शिक्षण-समस्या, समाजभावना, व्यावहारिक ज्ञान और आत्मग्लानि और विवाह-प्रेम की समस्या। इन सब विषयों पर प्रो० शास्त्री ने एडलर महोदय के विचारों का उदाहरणों द्वारा स्पष्ट निरूपण किया है। लेखक ने स्वयं एडलर महोदय के विचारों को अच्छी तरह और ठीक ठीक समझा है और उन्हें पाठकों को समझाने का प्रयत्न किया है। इतने छोटे आकार की पुस्तक में इससे अधिक और क्या दिया जा सकता था? आशा है कि इस पुस्तक को पढ़कर पाठकों के हृदय में मन के भेदों को अधिकतर जानने की रुचि और उत्कण्ठा पैदा होगी, जिसको तृप्त करने के लिये वे या तो अँगरेजी की पुस्तकें पढ़ेंगे या इस विषय के जाननेवाले आचार्यों के समीप जाने को प्रेरित होंगे।

पुस्तक के अंत में विषयानुक्रमणिका दी गई है, जिससे उसकी उपयोगिता की वृद्धि हो गई है। कहीं कहीं भाषा और छपाई में दोष भी हैं जो, आशा है, दूसरे संस्करण में ठीक कर दिए जायँगे।

—भी० ला० आत्रेय (एम० ए०, डी० लिट्०)।

——

राजपूताने का इतिहास—प्रथम भाग, लेखक श्री जगदीशसिंह गहलोत, एम० आर० ए० एस०, एंटिक्वेरियन एंड हिस्टोरियन; प्रस्तावना-लेखक रायबहादुर के० एन० दीक्षित, एम० ए०, एफ० आर० ए० एस० बी०, डाइरेक्टर जेनरल आव आर्कियालॉजी इन इंडिया; प्रकाशक हिंदी-साहित्य-मंदिर, घंटाघर, जोधपुर; प्रथम संस्करण सं० १९९४, पृष्ठ-संख्या ४४ + ७२१ + ५; चित्र २७८; नकशे ८; मूल्य ५) ।

हमारे समूचे देश का व्यापक, सर्वांगपूर्ण तथा क्रम-बद्ध इतिहास लिखने के लिये अभी तक कोई संतोषप्रद योजना कार्यान्वित नहीं हो सकी। इसके कई कारण हैं। देश का विस्तार, इसकी अति प्राचीन सभ्यता, पुराने भारतीयों का लौकिक यश-गान को उपेक्षा की दृष्टि से देखना, सार्वभौम सत्ता का प्रायः अभाव, समय, संघर्ष और उदासीनता के कारण ऐतिहासिक सामग्री का लोप या विनाश आदि उनमें से कुछ मुख्य हैं। संपूर्ण भारत का प्रामाणिक इतिहास लिखने के लिये यह भी आवश्यक है कि उसके भिन्न भिन्न भागों का क्रमबद्ध प्रामाणिक इतिहास लिखा जाय। ऐसे स्थानीय इतिहास लिखना देशीय इतिहास लिखने से इस अर्थ में सरल है कि लेखक एक निश्चित तथा सीमित क्षेत्र में अधिक अधिकार-पूर्ण पुस्तक लिख सकता है। लेकिन यदि ऐसी प्रामाणिक पुस्तकें प्रायः सभी प्रांतों, प्रांतीय विभागों और रियासतों की लिखी जा सकें तो उनके आधार पर संपूर्ण भारत का इतिहास लिखना कुछ अधिक आसान होगा। इसके अतिरिक्त स्थानीय इतिहास स्थानीय जनता में अपने प्राचीन गौरव का गर्व संचार करते हुए उनकी हीनावस्था या अधोगति के कारणों का विश्लेषण करके उनको उन्नति की ओर अग्रसर करने में सहायक होते हैं। अस्तु, स्थानीय इतिहासों का महत्त्व देशीय तथा स्थानीय दोनों ही दृष्टियों से बहुत अधिक है।

हमारे देश के विभिन्न भागों में राजपूताना एक विशेष ऐतिहासिक महत्त्व रखता है। हर्ष की मृत्यु के बाद से १९वीं सदी के आरंभ तक राजपूताना एक विस्तृत रणक्षेत्र रहा है। इसने साम्राज्यों का उत्थान-पतन, वीरों का रण-कौशल, वीर रमणियों का उज्ज्वल जीवन और अमर मरण, आततायियों का दमन, संघर्ष, ईर्ष्या और आंतरिक कलह, कला, साहित्य और

धर्म का उत्कर्ष तथा मदिरा, अफीम आदि का सेवन, सभी समय समय पर देखा है। इसके इतिहास में हमें गौरव और गर्व की सामग्री के साथ साथ इस देश की परतंत्रता के कुछ कारण भी सहज ही प्राप्त होंगे। इसके उचित उपयोग से हम अपनी हीनावस्था को दूर करने में सफल हो सकते हैं।

किंतु यह आश्चर्य की बात है कि अभी तक हमारे देश के विभिन्न विद्वान् इतिहास-लेखकों ने समूचे राजपूताने का कोई प्रामाणिक इतिहास प्रकाशित नहीं किया था। श्रीयुत जगदीशसिंह जी गहलोत ने इस कमी को पूरा करने का उद्योग करके राजपूताना-निवासियों तथा इतिहास-प्रेमी जनता का बड़ा उपकार किया है।

लेखक ने पुस्तक की रचना इस प्रकार की है कि वह गजेटियर का कार्य करती हुई साधारण इतिहास का भी कार्य भले प्रकार करती है। पुस्तक के प्रथम भाग में पहले 'राजपूताना' का संक्षिप्त प्राचीन इतिहास, उसके राजवंशों और विजेताओं का उल्लेख, 'राजपूत' शब्द के अर्थ का विश्लेषण, राजपूताने का भौगोलिक वर्णन तथा वहाँ के निवासियों का सामाजिक, धार्मिक, व्यावसायिक, कलात्मक एवं राजनीतिक जीवन का चित्रण किया गया है। इस भाग की साधारण शैली गजेटियर की सी है, लेकिन इसको यथासंभव ऐतिहासिक, सजीव और रोचक बनाने का प्रयत्न किया गया है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये लेखक ने राजपूताने से संबंध रखनेवाले प्रमुख व्यक्तियों तथा वहाँ के विभिन्न भागों के सामाजिक चित्र दिए हैं और प्रचलित जन-श्रुतियों तथा कहावतों का उल्लेख किया है।

इसके बाद मेवाड़, डूँगरपुर, बाँसवाड़ा, प्रतापगढ़, शाहपुरा, करौली तथा जैसलमेर राज्यों का वर्णन किया गया है। प्रत्येक राज्य के इतिहास में पहले उसका वर्तमान भौगोलिक, सामाजिक तथा व्यावसायिक वर्णन दिया गया है और वर्तमान शासन-प्रणाली का सूक्ष्म उल्लेख किया गया है। तत्पश्चात् प्रारंभ से लेकर वर्तमान समय तक के शासकों का क्रमानुसार वर्णन किया गया है। उनके जीवन की साधारण घटनाओं के अतिरिक्त उनके शासन-संबंधी सुधारों, प्रजाहितकार्यों तथा धर्म-साहित्य-कला-का भी यथास्थान उल्लेख किया गया है। विवादग्रस्त विषयों

पर प्रामाणिक ऐतिहासिक साधनों के आधार पर प्रकाश डालने का अच्छा प्रयत्न किया गया है।

अंत में राज्य के विभागों, उसके सरदारों आदि का भी संक्षिप्त वर्णन दिया गया है, जो बहुत ही उपादेय है। अँगरेजी सरकार से प्रत्येक राज्य के अहदनामे देकर वर्तमान संबंध को स्पष्ट करने का सुंदर प्रयत्न किया गया है।

पुस्तक में निम्न-लिखित बातों का विशेष ध्यान रखा गया मालूम होता है :—

(१) पुस्तक गजेटियर, इतिहास और डाइरेक्टरी तीनों का ही समुचित रूप से कार्य कर सके।

(२) पाठ्य-सामग्री सजीव तथा रोचक बनाई जाय और साथ ही साथ प्राप्य ऐतिहासिक ज्ञान के आधार पर संकलित हो।

(३) प्रत्येक राज्य की विशेषता स्पष्ट हो जाय और उसके शासक, शासन-प्रबंध तथा जनता की स्थिति ठीक ठीक समझाई जाय। सहानुभूति और निष्पक्षता का अच्छा मिश्रण है।

(४) दर्शनीय स्थानों का ऐसा वर्णन किया जाय जिससे पाठक के हृदय में उन्हें देखने की इच्छा उत्पन्न हो। इसी उद्देश्य से प्रचुर चित्रों का भी समावेश किया गया है।

(५) प्रत्येक राज्य की जनता के खान-पान, पहनावा, धर्म, रीति-रस्म, शिक्षा-दीक्षा आदि पर समुचित प्रकाश डाला जाय।

पुस्तक की छपाई सुंदर और साफ है। 'गेट-अप' भी संतोषजनक है। किंतु इसमें दिए गए नकशे संतोषजनक नहीं हैं। आशा है, वे दूसरे संस्करण में अधिक स्पष्ट, पूर्ण और संकेत-सहित दिए जायँगे।

भाषा, छपाई, सामग्री तथा वर्णन-शैली को दृष्टि में रखते हुए यह पुस्तक एक सुंदर ऐतिहासिक ग्रंथ है जिससे इतिहास-प्रेमियों का बहुत उपकार होगा। इसके लेखक हमारी बधाई के पात्र हैं।

—अवधबिहारी पांडेय, एम० ए०।

संक्षेप जीवन और वाणी गुरु तेग बहादुर जी—प्रकाशक, सर्व-हिंद सिक्ख मिशन, अमृतसर (पंजाब), सन् १९३५ ई०, मूल्य ?

यह एक छोटी सी पुस्तिका है। इसके प्रारंभ में गुरु तेगबहादुर जी की संक्षेप में जीवनी दी हुई है; परंतु वाणियाँ इसकी गुरु नानकजी की ही हैं। भक्त गुरु नानक ने राम की भक्ति और स्मरण पर विशेष जोर दिया है। कहीं कहीं एक-दो स्थान पर गोविंद और निरंजन का नाम भी आया है। गुरु नानकजी ने "नानक मुक्ति ताहि तुम मानहु जिहि घट राम समावै" का उपदेशामृत देकर 'राम' को 'अकाल पुरुष' के रूप में देखा है। उन्होंने कहा है:—

"जामें भजन राम का नाहीं।
तिह नर जन्म अकारथ खोया यह राखहु मन माहीं॥"

इस पुस्तिका की भाषा सरल, बोधगम्य और सरस है। इसमें कुल दो या तीन ही 'गाफिल' जैसे अरबी या फारसी के शब्द आए हैं, नहीं तो पदों की भाषा संस्कृत और प्राकृत के ऐसे छोटे छोटे चलते शब्दों से बनी है जो बिना किसी प्रयास के अपने आप पाठकों की समझ में आ जाते हैं। उदाहरण के लिये उसके दो पद नीचे उद्धृत किए जाते हैं:—

"आशा मनसा सगल त्यागे, जग ते रहे निराशा।
काम क्रोध जिहिं परसै नाहिन, तिंह घट ब्रह्म-निवासा॥
भय काहू को देत नहिं, नहिं भय मानत आन।
कहु 'नानक' सुन रे मना, ज्ञानी ताहि बखान॥"

नीचहुँ ऊँच करै मेरा गोविंद—प्रकाशक सर्वहिंद-सिक्ख-मिशन, अमृतसर (पंजाब), सन् १९३५ ई०, मूल्य ?

शिरोमणि-गुरुद्वारा-प्रबंधक कमेटी की ओर से गद्य में निकाली गई यह एक छोटी सी पुस्तक है जो गुरु गोविंदसिंहजी की विशेषताओं पर थोड़े में अधिक प्रकाश डालती है। 'भाई लालो बाढ़ी' और 'मरदाना मीरासी' जैसी इसमें कुछ ऐतिहासिक कथाएँ दी हुई हैं जिनसे यह विदित होता है कि किस प्रकार तत्कालीन समाज के ठुकराए और पददलित हरिजनों (अंत्यजों) को प्रेम से गले लगाकर और उन्हें वास्तविक हरिजन (भगवान्

का भक्त) बनाकर गुरुओं ने अपनी महान् आत्माओं का परिचय दिया था। पुस्तक के अंत में लिखे हुए गुरु गोबिंदसिंहजी के कवित्तों में से एक यहाँ उद्धृत किया जाता है—

"जैसे एक आगते कनूका कोट आग उठै,
न्यारे न्यारे ह्वै के फिर आग में मिलाहिंगे।
जैसे एक धूर ते अनेक धूर पूरित है,
धूर के कनूका फिर धूर में समाहिंगे॥
जैसे एक नद ते तरंग कोटि उपजत है,
पान के तरंग सबै पान ही कहाहिंगे।
तैसे विश्वरूप ते अभूत भूत प्रगट है,
ताही ते उपज सबै ताही में समाहिंगे॥"

आशा की वार—प्रकाशक, सर्व-हिंद-सिक्ख मिशन, अमृतसर (पंजाब), सन् १९३५ ई०; मूल्य ?

पंजाबी भाषा में गुरु नानक की वाणियों का यह एक छोटा सा गुटका है। पंजाबी समझनेवाले भक्तों के लिये यह सचमुच एक अच्छी चीज है। हिंदी के ज्ञाता भी, यदि ध्यानपूर्वक पढ़ें तो, इसे समझ सकते हैं। इसमें भगवद्भजन के पद दिए गए हैं। उनमें से दो-एक नीचे दिए जाते हैं—

"कुदरति दिस्सै, कुदरति सुणिये, कुदरति भउ सुख सारु।
कुदरति नेकीया, कुदरति वदीआ, कुदरति मान अभिमान॥
'नानक' हुकमै अंदरि देखै वरतै ताके ताक॥"

इन धर्म-संबंधी कई पुस्तकों को देवनागरी लिपि में ज्यों की त्यों प्रकाशित कराकर सर्व-हिंद-सिक्ख मिशन, अमृतसर (पंजाब) ने देवनागरी लिपि और हिंदी भाषा के प्रति अपने बड़े प्रेम का परिचय दिया है।

हमें विश्वास है कि इन पुस्तकों का हिंदी पाठकों में यथेष्ट आदर और प्रचार होगा।

—सच्चिदानंद तिवारी, एम० ए०।

प्रयाग-प्रदीप—लेखक श्री शालिग्राम श्रीवास्तव; प्रकाशक हिंदुस्तानी ऐकेडमी, इलाहाबाद; मूल्य साधारण जिल्द ३॥), कपड़े की जिल्द ४) ।

प्रस्तुत पुस्तक के लेखक पुराने साहित्यसेवी हैं। इतिहास से आपको विशेष प्रेम है। समय समय पर पत्र-पत्रिकाओं में आपके खोज-पूर्ण लेख बराबर निकला करते हैं। इस पुस्तक में आपने प्रयाग नगर एवं उसके निकटवर्ती विशिष्ट स्थानों के संबंध में प्रायः सभी ज्ञातव्य बातों का संकलन अनेक पत्र-पत्रिकाओं, पुस्तकों, पुराणों, जनश्रुतियों एवं १०-१५ वर्ष के परिश्रम से किया है। आरंभ से लेकर अब तक का इतिहास, विस्तृत भूगोल, निवासियों की रहन-सहन, भाषा आदि; कृषि, वाणिज्य-व्यापार, कला-कौशल, नगर की वर्तमान विभिन्न संस्थाएँ, पुरातत्त्व संबंधी कार्यों एवं प्राचीन स्थानों का विशद वर्णन है। पुस्तक बड़ी उपयोगी है और प्रयाग के संबंध में कुछ जानने के लिये इस पर निस्संकोच निर्भर रहा जा सकता है।

—रामबहोरी शुक्ल ।

हिंदी-उपन्यास—लेखक श्री शिवनारायण श्रीवास्तव, एम० ए०, एल-एल० बी०, प्रिंसिपल, गोवर्धन साहित्य महाविद्यालय, देवघर; प्रकाशक, सरस्वती-मन्दिर, काशी; मूल्य २) ।

हिंदी का उपन्यास-साहित्य अपेक्षाकृत नवीन है। फिर भी इस अल्पकाल में ही हिंदी-उपन्यासों की संख्या में जितनी वृद्धि हुई है, वह उनकी लोकप्रियता का परिचय देती है। प्रेमचंद से लेकर अब तक इस क्षेत्र में कितने ही नवीन प्रयोग हुए हैं और होते जा रहे हैं। अपने साहित्य की यह प्रगति अभिनंदनीय है। परंतु हमें संकोच होता है यह देखकर कि इस प्रगति का लेखा लेनेवाले आलोचना-ग्रंथों का प्रायः अभाव सा ही है। हमारे 'उपन्यास-सम्राट्' की 'कला' पर तो थोड़ा-बहुत लिखा भी गया, परंतु अन्य उपन्यासकार समालोचकों की सहानुभूति से वंचित ही रहे। श्रीवास्तव जी ने इस ओर प्रकाश डाला है। वे हमारी बधाई के पात्र हैं।

'हिंदी-उपन्यास' का प्रथम प्रकरण उपन्यास की सीमा निर्धारित करता है। अन्य प्रकार की साहित्यिक कृतियों से उपन्यास का भेद, उपन्यास के तत्त्व, उसके प्रकार आदि का शास्त्रीय ढंग से संक्षेप विवेचन इस प्रकरण का लक्ष्य है। थोड़े में बहुत कहने के प्रयास ने इस प्रकरण को कहीं कहीं क्लिष्ट कर दिया है, परंतु जो कुछ कहा गया है वह स्पष्ट और प्रमाण-पुष्ट है। दूसरे प्रकरण में प्रमाणों के साथ यह दिखाया गया है कि कथा-कहानियों की परंपरा हमारे यहाँ अत्यंत प्राचीन है। यह कोई बाहर की वस्तु नहीं है। इस प्रकरण में लेखक ने यह स्वीकार किया है कि उपन्यासों का आधुनिक ढाँचा पाश्चात्यों की देन है, यद्यपि उपन्यास की भारतीय परंपरा 'कादंबरी' से भी प्राचीन है। तृतीय प्रकरण में हिंदी-उपन्यास के आरंभ काल के लेखकों का उल्लेख है। इसमें सैयद इंशा अल्ला खाँ से लेकर देवकीनंदन खत्री, किशोरी-लाल गोस्वामी एवं गोपालराम गहमरी सभी आ जाते हैं। इनमें, जैसा कि लेखक ने स्वीकार किया है, अधिकांश को उपन्यासकार कहा ही नहीं जा सकता, परंतु विकास दिखाने के लिये उनका उल्लेख आवश्यक था। लेखक ने देवकीनंदन खत्री का महत्त्व बड़ी सहृदयता से स्वीकार किया है। चतुर्थ प्रकरण में श्रीप्रेमचंद से लेकर आज तक के प्रमुख उपन्यास-कारों का संक्षिप्त विवेचन है। इन लेखकों का कोई ऐतिहासिक क्रम नहीं है। अच्छा होता यदि लेखक या तो जन्मकाल अथवा रचनाकाल के विचार से इनका क्रम रखता। इस प्रकरण से यह स्पष्ट है कि लेखक ने केवल सुनी-सुनाई अथवा पढ़ी-पढ़ाई बातों पर ही विश्वास नहीं कर लिया है, वरन् कृतियों को पूरा पूरा पढ़कर अपनी स्वतंत्र सम्मति निर्धारित की है। प्रत्येक लेखक की संक्षिप्त परंतु स्पष्ट आलोचना की गई है, थोड़े में ही उनकी विशेषताओं एवं त्रुटियों का दिग्दर्शन करा दिया गया है। यह अवश्य है कि ये आलोचनाएँ पूर्ण नहीं हैं। किंतु लेखक का यह अभीष्ट भी नहीं था। उसने केवल उपन्यास का विकास दिखाते हुए मुख्य मुख्य विशेषताओं का उल्लेख मात्र किया है। इस तरह सीमाबद्ध होकर लेखक ने जिस विशदता, परख और अंतर्दृष्टि का परिचय दिया है वह बहुत श्लाघ्य है।

पुस्तक की लेखन-शैली बड़ी सरस और सुबोध है। भाषा संस्कृत-गर्भित हिंदी है, यद्यपि अवसरानुकूल उर्दू वाक्यों और मुहावरों का प्रयोग भी बेधड़क किया गया है। भाषा और शैली में प्रवाह है। एकाध स्थान पर अँगरेजी ढंग की वाक्य-रचना है, जो कि अँगरेजी का अनुवाद जान पड़ती है। उदाहरणार्थ पृष्ठ ६३ पर "हमारी अनुभूतियों में सभी प्रकार और सभी मात्राओं के कलामूल्य हैं"। श्रीवास्तव जी स्यात् जोंक अथवा उसके क्रिया-कलाप से परिचित नहीं हैं; अन्यथा वे जोंकों का कुरेदना न लिखते। जोंक कुरेदती नहीं, चूसती है। इनके अतिरिक्त भाषा संबंधी दो-एक भूलें हैं।

इस सुंदर और सुसज्जित पुस्तक में सबसे बड़ा दोष छपाई का है। प्रूफ-संशोधन बड़ी असावधानी से किया गया है जिसके कारण छापे की अनेक भूलें रह गई हैं। कहीं कहीं तो ये भूलें इतनी भद्दी हैं कि मानी-मतलब सब खब्त हो जाता है, वाक्य के वाक्य छूट गए हैं।

—झ।

मानव—लेखक श्री श्यामबिहारी शुक्ल 'तरल'; प्रकाशक, साहित्य-निकेतन, कानपुर; डबल क्राउन १६ पेजी आकार के ६६ पृष्ठ; मूल्य ।।)।

'तरल' जी एक उदीयमान सहृदय भावुक कवि हैं। अकिंचन मानव के संबंध में मननशील रहते-रहते उसकी क्षुद्रता की समय-समय पर जैसी भावना उनके हृदय में उठी है, उसे उन्होंने सहज-सीधी भाषा में पद्यबद्ध किया है। इसमें खड़ी बोली और सवैया छंद का व्यवहार हुआ है। भाषा सरल है, उसमें प्रवाह है। वर्ण्य-विषय से एकतान होकर भाव सीधे हृदय को स्पर्श करते हैं। मानव कितना क्षुद्र, उसका अहंकार कितना थोथा, महत्त्वाकांक्षा कितनी निस्सार एवं उसकी क्षमता कितनी नगण्य है इसका बड़ा सुंदर वर्णन कहीं कहीं देखने को मिलता है और पुस्तक समाप्त होने पर हम थोड़ी देर के लिये अस्तव्यस्त-से हो उठते हैं। 'तरल' जी की इस कृति को अपनाकर हिंदी-जगत् उन्हें प्रोत्साहित करेगा, ऐसी आशा है।

—रामबहोरी शुक्ल

स्वस्तिका—लेखक श्री० निरंकार देव सेवक; प्रकाशक हिंदी-प्रचारिणी सभा, बरेली कालेज, बरेली; मूल्य ॥≈) ।

प्रस्तुत संग्रह जीवन की असफलताओं से दुखी और निराश हृदय का स्फुट राग है, जिसपर कसक और विप्रलंभ की स्पष्ट छाया है। करुणा और अतीत की स्मृति से प्रकर्ष को प्राप्त होकर वह राग जहाँ-तहाँ मधुर हो उठा है—

विश्व के सुषमा-सदन में मैं चला सुख खोजने तो
घन तिमिर में रात के रोती मिली संध्या सुनहरी।
गान पर मेरे न हो क्यों वेदना की छाप गहरी॥

तृष्णा-जनित ममत्व और अपरिसर्पणीय रूप-लालसा के पीछे पड़कर अंत में प्राणी विषाद और विरक्ति की जिस परिस्थिति को प्राप्त होता है, इन गीतों के कवि का मन भी उसी अवस्था का अनुगामी प्रतीत होता है। 'जगत् मिथ्या है', अतृप्त राग के बाद विराग की यही भावना इन रचनाओं का विचारात्मक आधार है। अपने चारों ओर दुश्चिंतन, अवसाद, वेदना तथा अतृप्त आकांक्षाओं के विध्वंस के अतिरिक्त उसे कुछ दिखाई ही नहीं पड़ता। उसके लिये ये ही जीवन की वास्तविकताएँ हैं। शांति और छुटकारे की खोज में उसका त्रस्त, पराजित और घबराया हुआ पलायनशील मन 'नश्वर जगत् को त्याग' क्षितिज के पार भागना चाहता है; पर वहाँ भी उसे शांति मिलेगी, इसका उसे विश्वास नहीं। 'संभव है......।'

मुक्ति और शांति की खोज में क्षितिज पार जानेवाले इस कच्चे दार्शनिक को यह नहीं ज्ञात है कि मोक्ष और शांति का किसी ग्राम या पुर में निवास नहीं जहाँ उससे भेंट की संभावना हो। शांति तो जानकार के लिये यहीं है।

पहली कविता में मेघदूत के यक्ष की भाँति कविजी अपने 'विहग-कुमार' से मन का बोझ हलका करने के लिये अपने हृदय की बात कह गए हैं। इसमें वस्तु निर्वाह आधुनिक विश्व-स्थिति को लेकर अच्छा हुआ है।

एक प्रतिहतगेति भिन्न तुकवाली कविता (?) को छोड़ प्रायः सब एक ही छंद में हैं। शब्दयोजना सरल एवं सप्रभाव है। भाषा चलती और

मुहावरेदार होती हुई भी असावधानी के दोषों से रिक्त नहीं। कहीं प्रबंध-शैथिल्य है तो कहीं अन्विति का अभाव। मात्रा, छंद, क्रम सब ठीक होते हुए भी यतिस्थल पर शब्दों के अंगच्छेद से उत्पन्न हतवृत्त दोष भी कम नहीं। जैसे जी—वन, पर—देसी, निरखा—थीं, स्व—च्छंद, सुकु—मारियों आदि। ग्राम्य और अप्रचलित प्रयोगों की भीड़ भी घनी है। यथा—रवि बाबा का आगम, पस्त-पलक, 'मधुमास से बयाबाँ बसाऊँ'। 'आएँ' के स्थान पर 'आँयँ', समाधि के लिये 'समाधी', सीख के लिये 'सिख', विजयी के लिये 'विजाँय' का प्रयोग भी अधिकार का दुरुपयोग मात्र है। 'बन जाना तुम राधा मानी' और 'अनेकों' भी चिंत्य हैं। धड़ाधड़ कविता पुस्तकों के प्रणयन में यत्नवान् व्यक्ति का इस ओर ध्यान न देना शुभ नहीं।

इन सब के होते हुए भी कविताएँ साधारणतः अच्छी हैं। कवि के स्वप्नों और उसकी कल्पनाओं में अनुभूति की सचाई अपने अव्यभिचरित आशय से उद्भासित है। अंतर्भावों की यही निरीह और सीधी-सादी व्यंजना इनकी विशेषता है। दूसरी बात है, कवि की अपने विचारों में वह निष्ठा जिसकी अभिव्यक्ति में बनावट से कहीं भी काम नहीं लिया गया है।

—रा० ना० श०।

प्रेमोपहार—लेखक और प्रकाशक खुशीराम शर्मा वाशिष्ठ, विशारद, प्रेमकुटीर, महम (रोहतक); डबल क्राउन १६ पेजी; पृष्ठ ६०, मूल्य ।≡)।

कवि की स्फुट कविताओं का यह प्रथम संग्रह है। रचनाएँ भिन्न भिन्न विषयों पर हैं और अधिकांश अनुभूति की उद्भावना से प्रेरित हैं। विषय-निरूपण तथा भावाभिव्यंजन में कवि को कहीं कहीं यथेष्ट साफल्य लाभ हुआ है। उक्तियाँ कहीं सरस तथा मर्मस्पर्शी हैं, कहीं सीधे-सादे ढंग की और कहीं चिंत्य—

निस्सार कौन कहता है यह, तुम देखो इसका सार प्रिये !
करते हैं इस जीवन से ही, हम वह जीवन तैयार प्रिये !

—'स्मृति में' से

अंतस्तल की चिर पीड़ा, लिखते लिखते दृग हारे।
लिख न सके पर हाय, बहाकर भी ये प्रबल पनारे॥
—'अनुरोध' से

पंजाबी साँचे की ऐसी भाषा के प्रयोग का नियंत्रण आवश्यक है—
जागो तुमने ही भारत का, नव इतिहास बनाना है,
जागो तुमने ही नव-राष्ट्र-पताका को फहराना है॥
—'जागो' से

सहृदय पाठकों की ओर से कवि को निराशा न होनी चाहिए। वह स्वयं तो यथेष्ट आशान्वित है ही—
मैं आज रचूँगा सृष्टि एक, चिर अमर रहे जिसमें बहार;
शत शत जय लाती हो जिसमें, मानव-जीवन की एक हार॥
—'शुभ मिलन' से

कवि का स्वागत हमारा कर्तव्य है और लोक-कल्याण के निमित्त उसकी मंगलमयी वाणी का विकास हमारी कामना।
—शं० वा०।

महाभारत—रचयिता श्री श्रीलाल खत्री; प्रकाशक महाभारत पुस्तकालय, अजमेर। "गद्य में लिखी पुस्तक को एक ही मनुष्य एक समय पढ़ सकता है अथवा दस बीस मनुष्यों को सुना सकता है इसलिये ऐसी पुस्तक का ज्ञान प्रत्येक मनुष्य के हृदय में उत्पन्न होने में बहुत विलंब लग जाता है परंतु यदि वही पुस्तक पद्य में हो और वह भी यदि हारमोनियम तथा तबले पर गाई जा सके तो एक ही समय में सैकड़ों मनुष्य सुन सकते हैं।......मैंने देखा था कि कीर्तन-कलानिधि पंडित राधेश्यामजी की रामायण सुनकर सभी मनुष्य मुग्ध हो गए थे। मैंने विचारा कि महाभारत भी इसी तर्ज में हो तो मनो 'जन के साथ साथ भारतवासियों के हृदय पर अपने पूर्वजों के गुणों का चित्र पूर्णतया अंकित हो जाय।...सर्वसाधारण के लिये महाभारत को संक्षिप्त करके २२ हिस्से कर दिए हैं, लेकिन इस बात का पूरा पूरा यत्न किया गया है कि महाभारत की कोई भी मुख्य कथा न छूटने पावे।" बाईसों भागों के पृथक् पृथक् नाम—भीष्म-प्रतिज्ञा, पांडवों का जन्म, पांडवों की

अस्त्रशिक्षा, पांडवों पर अत्याचार, द्रौपदी-स्वयंवर, पांडवराज्य, युधिष्ठिर का राजसूय यज्ञ आदि हैं। फुटकर अंकों में किसी का मूल्य ।) है और किसी का ।-) । बाईसों भागों का मूल्य ६।) होता है।

रचना का उद्देश्य ऊपर उद्धृत रचयिता के वाक्यों से प्रकट हो ही गया है; रही बात रचना की परख की, सो यह कथा-वाचक की शैली के अनुकरण का प्रयास है। जिस श्रेणी की जनता के उपयोग के लिये इसकी रचना हुई है उसको पसंद आ जाने में ही इसकी उपयोगिता है। सन् १९२५ में इसका प्रथम संस्करण हुआ था, तब से एकाधिक बार मुद्रित होने से जान पड़ता है कि लोगों में इसकी माँग है। रचना की आदरणीयता के लिये रचयिता को जो प्रशंसापत्र मिले हैं उनमें से कुछ तृतीय संस्करण में छापे गए हैं, इससे भी पूर्वोक्त बात पर प्रकाश पड़ता है। यह सब होने पर भी एक बात कहनी पड़ती है कि रचयिता ने शब्दों के रूपों की कुछ चिंता करना आवश्यक नहीं समझा। सदृष्य, धनुर्वी, भीषम, देवबृत, सत्यवृती, भूमी, ज्येष्ट, धराश्यायी, अवनेश, भक्ती, दर्श, मनोर्थ आदि इसके उदाहरण हैं। पद्यों की भाषा भी यत्र-तत्र कुंठित सी है। जैसे—"इसमें तीनों ने तन तजकर, निज कर्मनुसार लोक पाया। कुंती ने पुत्रों का मुँह लख, जैसे तैसे मन समझाया। फिर राजमहल में रहन लगे, पांडव और कौरव गन सारे।" किंतु टकसाली भाषा के प्रयोग का भी सर्वथा अभाव नहीं है—"मृगया को इक दिन गए, पांडु भूप रणधीर। मृग का जोड़ा देखकर मारा तककर तीर।" "किया काम अपराध का, क्षमा किस तरह होय। कैसे, बड़ के वृक्ष से, केला पैदा होय॥" में तो नई उपमा है ही।

—ल० पा०।

रक्षाबंधन (नाटक)—लेखक श्री हरिकृष्ण 'प्रेमी'; प्रकाशक हिंदी-भवन, अनारकली, लाहौर; मूल्य ॥≈)।

प्रस्तुत नाटक में 'प्रेमी'जी ने महाराणा संग्रामसिंह (साँगा) की मृत्यु के उपरांत उनके उत्तराधिकारी अल्पवयस्क पुत्र विक्रमादित्यसिंह की विलास-प्रियता, नैतिक पतन, राजपूत सरदारों की पारस्परिक ईर्ष्या, द्वेष तथा

मनोमालिन्य के कारण मेवाड़ की जर्जर एवं शक्तिहीन दशा का चित्रण किया है। इसके पश्चात् राणा साँगा की दो विधवा पत्नियों जवाहरबाई और कर्मवती ने किस प्रकार युवक राणा विक्रमादित्य को पतन के गर्त में गिरने से बचाया और उन्हें तथा समस्त राजपूत सरदारों को मेवाड़ की परंपरागत वीरता तथा शौर्य का स्मरण करा उनमें अपूर्व शक्ति और साहस का संचार कर कर्त्तव्यपथ पर आरूढ़ किया, इसका सजीव वर्णन इस नाटक की विशेषता है। अपने गौरव और मर्यादा की रक्षा के लिये मेवाड़ अपना सर्वस्व उत्सर्ग करने में सदा से प्रसिद्ध रहा है। इसी घटना का चित्रण इस नाटक में हुआ है।

रक्षाबंधन की कथावस्तु रोचक तथा हृदयस्पर्शी है। कथा यह है कि गुजरात के बादशाह बहादुरशाह का भाई चाँद खाँ उसका कोपभाजन बनकर वहाँ से भाग निकलता है और मेवाड़ में जाकर शरण लेता है। बहादुरशाह एक दूत द्वारा यह कहला भेजता है कि यदि चाँद खाँ मेवाड़ की सीमा से बाहर नहीं निकाल दिया जाता तो मैं उस पर आक्रमण कर उसे विध्वस्त कर दूँगा। वीर राजपूत अपने गौरव तथा मर्यादा की रक्षा के लिये इस प्रस्ताव को ठुकरा देते हैं और फलस्वरूप बहादुरशाह मेवाड़ पर आक्रमण कर देता है। जवाहरबाई और कर्मवती के प्रोत्साहन से राजपूत बड़ी वीरता से लड़ते हैं; किंतु बहादुरशाह की सेना और युद्ध-सामग्री के आगे उनका निरंतर क्षय होता है। अंत में अन्य किसी प्रकार की सहायता की आशा न रहने पर कर्मवती हुमायूँ को अपना भाई मानकर सहायता के लिये उसके पास राखी भेजती है। हुमायूँ इस राखी का महत्त्व समझकर मेवाड़ की सहायता के लिये चल देता है; किंतु उसके पहुँचने के पूर्व ही मेवाड़ का पतन हो जाता है। कर्मवती के साथ अन्य सभी स्त्रियाँ जौहर करके अपने सतीत्व की रक्षा करती हैं। हुमायूँ को अपने देर में पहुँचने पर अत्यंत परिताप होता है। वह बहादुरशाह को पराजित करके वहाँ से भगा देता है और मेवाड़ के सिंहासन पर फिर से विक्रमादित्य को बैठाता है।

'रक्षाबंधन' 'प्रेमी' जी की सफल रचना है। कथावस्तु के संगठन, पात्रों के चरित्र-चित्रण तथा कथोपकथन आदि सभी दृष्टि से यह नाटक

उत्कृष्ट है। पात्रों के चरित्र-चित्रण में लेखक को सबसे अधिक सफलता मिली है। पुरुष पात्रों में हुमायूँ, बाघसिंह (विक्रमादित्यसिंह के चाचा) तथा विजय (स्वर्गीय राणा रत्नसिंह का पोता) के चरित्र विशेष सुंदर हैं। स्त्री पात्रों में कर्मवती और जवाहरबाई का चित्रण आदर्श राजपूत रमणी के रूप में हुआ है। इस नाटक में स्त्री-पात्रों से ही पुरुष पात्रों को कर्मपथ पर अग्रसर होने का प्रोत्साहन मिला है। श्यामा (विजय की माँ) लेखक की कोमल सृष्टि है। उसका चरित्र-चित्रण बहुत सुंदर तथा हृदयस्पर्शी है। उसका यह गान—

अविरत पथ पर चलना री।

गति, जीवन का चरम लक्ष्य है विरति, मुक्ति सब छलना री।

अंत तक हमें प्रभावित करता है। श्यामा का चित्र हमारे हृदय पर स्थायी प्रभाव डालता है।

'रक्षाबंधन' में शिष्ट हास्य का समावेश बड़े कौशल से किया गया है जो उपयुक्त और मर्यादित है। इसके लिये लेखक ने परंपरागत 'विदूषक' की कल्पना न करके नाटक के दो पात्रों—मेवाड़ के सेठ धनदास और उसके पुत्र मौजीराम—के वार्त्तालाप में उसका समावेश किया है।

रंगमंच की सुविधाओं का इसमें भरसक ध्यान रखा गया है, जिससे इसका सरलतापूर्वक अभिनय हो सकता है।

परंतु इस सफल नाटक में एक बात खटकती है। वह यह है कि लेखक ने हिंदू-मुसलिम-ऐक्य की भावना को आवश्यकता से अधिक महत्त्व दिया है जो एक तो इतिहास-सम्मत नहीं, दूसरे रस-दृष्टि से भी नाटक को दोष-युक्त बनाती है।

आहुति (नाटक)—लेखक श्री हरिकृष्ण 'प्रेमी'; प्रकाशक हिंदी भवन, अनारकली, लाहौर; मूल्य ।।=)।

'आहुति' में रणथंभौर के प्रसिद्ध वीर हम्मीरदेव की कथा है। लेखक के 'रक्षाबंधन' तथा प्रस्तुत 'आहुति' में कथावस्तु की रूपरेखा और उसके विकासक्रम में अत्यधिक साम्य है। वेश्या-विलास, शरणागत की रक्षा का आग्रह, राखी उत्सव का आयोजन, साका और सर्वनाश आदि सब

कुछ वही है, केवल घटना और पात्रों के नाम भिन्न हैं। लेखक ने स्वयं स्वीकार किया है—

"अपने नाटकों में 'रक्षाबंधन', 'स्वप्नभंग' और यह 'आहुति' घटना-चक्र की समानता के कारण एक ही प्रकार के जान पड़ते हैं।"

'आहुति' व्यर्थ ऐतिहासिक नाटक कहा गया है; क्योंकि इसमें इतिहास की माँग पूरी नहीं हुई। ऐतिहासिक नामों के ग्रहण मात्र से कोई रचना उस कोटि में परिगणित नहीं हो सकती। 'आहुति' में कथा का अंतरंग और पात्रों का चरित्र-चित्रण इतिहास-सम्मत नहीं है। लेखक का कहना है—

"मैं इन काव्यों से चंद्रशेखर, ग्वाल और जोधराज और इतिहास से सिवाय नामों के और कुछ नहीं ले सका हूँ। नाटक की कथावस्तु, घटना-क्रम और भावनाएँ मेरी कल्पना और अनुभूति के ताने-बाने से बनी हैं।"

अतः यह स्पष्ट है कि 'आहुति' में लेखक का व्यक्तित्व प्रधान है और इतिहास गौण, जो वांछनीय नहीं। ऐतिहासिक नाटक की सफलता के लिये लेखक को देश-काल की वर्तमान स्थिति को प्रायः विस्मृत कर भूत में प्रविष्ट होना अपेक्षित है।

इन दोनों नाटकों में लेखक ने स्थान स्थान पर अर्वाचीन विचार और भावनाओं का समावेश करके अपने कर्त्तव्य की उपेक्षा की है। यथा—

जवाहर—मुसलमान भारत के शत्रु हैं।

कर्मवती—ऐसा न कहो। उन्हें भी तो भारत में जीना मरना है। हमारी तरह भारत उनकी भी जन्मभूमि हो चुकी है। अब उन्हें काफिले में लादकर अरब नहीं भेजा जा सकता। उन्हें यहीं रहना पड़ेगा और हमें उन्हें रखना पड़ेगा। (रक्षाबंधन, पृष्ठ ३२)

"हाँ बहन, राक्षस हो गया है। मनुष्य के स्वार्थ ने दूसरों पर प्रभुत्व जमाने की इच्छा पैदा की। जैसे बैलों को हम जुए में कसते हैं, उसी तरह बहुत से मनुष्य गरीब लोगों को दास बनाकर उनसे तरह तरह का काम लेते हैं, स्वयं मौज उड़ाते हैं और उनसे काम कराते हैं। हम अपने बैलों को पेट भर घास-दाना तो देते हैं, अपनी छान में उन्हें बाँधते तो हैं, लेकिन

मनुष्य तो अपने दासों को न पेटभर खाना देता है न रहने को घर। जिन्हें हम राजा, रईस, सेठ-साहूकार कहते हैं, उनका यही चित्र है, बहन !"

('आहुति', पृष्ठ ६१)

"केवल क्षत्रिय के यहाँ जन्म लेने से ही कोई क्षत्रिय नहीं हो जाता।"

(वही, पृष्ठ ६२)

इनमें इतिहास की दृष्टि से भयानक और अक्षम्य भूलें हैं। तेरहवीं शताब्दी में इन विचारों की कल्पना तक दुस्साध्य थी।

कहने की आवश्यकता नहीं कि 'प्रेमी' जी के नाटक कुमारी लज्जावती की प्रेरणा से एक विशेष उद्देश्य से लिखे गए हैं और वह उद्देश्य है—सांस्कृतिक और राष्ट्रीय एकता। इसी आवेश में 'आहुति' के मीर महिम और मीर गभरू का चरित्र अतिरंजित होकर अस्वाभाविकता की सीमा को पहुँच गया है।

'आहुति' में लेखक को यथेष्ट सफलता नहीं मिली। 'रक्षाबंधन' को पढ़ने के उपरांत 'आहुति' का हम पर कोई विशेष और स्थायी प्रभाव नहीं पड़ता। राजस्थान की ऐसी अपूर्व और रोमांचकारी घटना का आश्रय लेकर भी लेखक अपने श्रम को सार्थक नहीं कर सका। नाटक का संपूर्ण वैभव और सौंदर्य दूसरे अंक के पाँचवें दृश्य का 'चल अभागे छोड़कर घर' वाला गीत है।

—महेशचंद्र गर्ग, एम० ए०।

गाड़ीवालों का कटरा—तीन भाग। लेखक अलेक्जेंडर क्यूप्रिन, अनुवादक श्री चंद्रभाल जौहरी; प्रकाशक—सरस्वती प्रेस, बनारस; मूल्य ॥) प्रति भाग।

प्रस्तुत उपन्यास 'हंस-पुस्तक' के अंतर्गत तीसरी, चौथी और पाँचवीं पुस्तक है। अँगरेजी की Pelican और Penguin Series के अनुकरण पर हिंदी में भी 'माया सीरीज', 'सरस्वती सीरीज' आदि निकली हैं, जिनका उद्देश्य सस्ते मूल्य पर उच्च कोटि का साहित्य प्रस्तुत करना है। इनके प्रकाशक इस कारण धन्यवादार्ह हैं। 'हंस-पुस्तक' भी ऐसी ही एक पुस्तकमाला है।

यह उपन्यास प्रसिद्ध रूसी लेखक अलेक्जेंडर क्यूप्रिन के 'यामा दि पिट' का हिंदी अनुवाद है। उपन्यास यथार्थवादात्मक है। यहाँ पर यथार्थवाद बनाम आदर्शवाद के झगड़े पर विचार करने का न तो अवकाश ही है और न अवसर ही; फिर भी इतना निवेदन अवश्य करूँगा कि हिंदी में प्रचलित यथार्थवाद से यह भिन्न है। यथार्थ का उद्देश्य है हमारी कुरीतियों एवं बुराइयों के प्रति, उनके यथार्थ चित्रों द्वारा, हमारी घृणा जाग्रत् करना, सहानुभूति-पूर्वक उनके उन्मूलन की ओर निर्देश करना एवं उनके निवारण के उपायों की ओर संकेत करना। इस दृष्टि से यथार्थ एवं आदर्श में तत्त्वतः कोई भेद नहीं रह जाता। उनका उद्देश्य है बुराइयों की भीषणता की ओर आकृष्ट करना। परन्तु इसके विपरीत हमारे हिंदी के उपन्यासकारों की यथार्थता में उन बुराइयों एवं कुरीतियों के प्रति आकर्षण होता है, उनसे घृणा नहीं होती। कुरीतियों की भयानकता के प्रति आकर्षण दूसरी बात है और स्वयं कुरीतियों के प्रति बिलकुल उल्टी बात है। क्यूप्रिन अपनी कला द्वारा हमारी घृणा एवं सहानुभूति जाग्रत् करने में समर्थ होता है।

उपन्यास का विषय है वेश्यावृत्ति। प्रत्येक देश, प्रत्येक जाति एवं प्रत्येक समाज में इस वासना के दूषित, विषैले कीटाणु प्रविष्ट हैं, जो उसकी जीवन-शक्ति को भीतर ही भीतर खाकर खोखला किए देते हैं। समस्या एकदेशीय नहीं, सर्वदेशीय है। क्यूप्रिन ने यद्यपि रूस की ही दशा का दिग्दर्शन कराया है, परंतु फिर भी जिन कारणों एवं परिस्थितियों की ओर उसने संकेत किया है, वे सर्वमान्य होंगे। उसके अनुसार वेश्यावृत्ति एक ओर तो रोटी की समस्या है और दूसरी ओर काम-वासना की तृप्ति की। परंतु उसने इसका कोई समाधान नहीं बताया है। रोग की भयंकरता समझकर उसका निदान करके भी वह उसकी औषधि न बता सका। उसने स्वयं इस बात को अपनी भूमिका में स्वीकार किया है।

पुस्तक की सर्वप्रियता तो इसी से प्रमाणित है कि इसका अनुवाद संसार की प्रायः प्रत्येक भाषा में हो चुका है। केवल कथा की दृष्टि से इसे पढ़नेवाले पाठकों को स्यात् निराशा ही हो। कथा-सूत्र संगठित नहीं है, बिखरा हुआ है। वेश्यावृत्ति पर स्थान स्थान पर जो वाद-विवाद हैं वे भी,

संभवतः साधारण पाठकों को नीरस प्रतीत हों। परंतु लेखक की विचार-धारा से परिचित होने के लिये वे आवश्यक हैं। समाज के जिस नरक का लेखक हमें दिग्दर्शन कराता है वह वास्तविक है। चित्र यथातथ्य प्रस्तुत किया गया है, आकर्षक बनाने का प्रयत्न नहीं किया गया है। लेखक में इन अभागिनियों तथा पतिताओं के प्रति बहुत ममता, दया एवं सहानुभूति है। किंतु साथ ही साथ वह कठोर तथा निर्भीक भी है।

अनुवाद अच्छा है। भाषा सरल है। अनुवादक ने यथासंभव मूल के निकट रहने का प्रयत्न किया है। वाक्यों के विन्यास में यदि अधिक सतर्कता से काम लिया जाता तो अच्छा होता। कहीं कहीं वे अँगरेजी ढंग के हो गए हैं।

आरंभ के १४ पृष्ठों में मूल लेखक तथा अनुवादक की भूमिकाएँ हैं और अंत में परिशिष्ट के रूप में २२ पृष्ठों में अनुवादक ने भारत की वेश्यावृत्ति की समस्या पर विचार किया है। दोनों ही पठनीय एवं सारगर्भित हैं।

छपाई-सफाई अच्छी है। दाम भी कम है। पुस्तक परिपक्व बुद्धि के पाठकों के पढ़ने के योग्य है। आशा है, समाज की समस्याओं पर विचार करनेवाले इसका आदर करेंगे।

—रामचंद्र श्रीवास्तव, एम० ए०।

कानन—लेखक श्री जानकीवल्लभ शास्त्री; प्रकाशक पुस्तक-भंडार, लहेरियासराय; पृष्ठ २०७, मूल्य १॥)।

ग्यारह कहानियों का यह संग्रह 'कानन' भावों की बीहड़ता और विचारों की गहनता से युक्त है। 'प्राथमिकी' में जहाँ लेखक ने 'कानन' को 'खनखनाते झाड़ों-(झाड़)झंखाड़ों का झारखंड बताते हुए भाषा की अठखेलियाँ दिखाई हैं, वहाँ 'Instinct', 'Germ' और 'Excellent !' 'Next to shelley' जैसे अँगरेजी शब्दों और उक्तियों का, हिंदी अनुवाद के बिना ही, असंयत प्रयोग भी किया है।

'कानन' की 'पहली आजमाइश' से हिंदी के कथा-साहित्य को कोई नूतन विचारधारा मिलने की आशा व्यर्थ होगी। संग्रह की प्रारंभिक कहानियों में विस्तार और विश्लेषण है, अंत में यह स्थान संक्षेप और चयन ने लिया है। लेखक ने तथ्यवाद को विशेषता दी है, पर अनेक स्थलों पर लेखक सुरुचि की सीमा का अतिक्रमण करता दिखाई पड़ता है।

'कानन' का ललित चरित्र की शिथिलता के कारण लीला या कानन की अपेक्षा हृदय को कम स्पर्श कर पाता है। माता से कानन का संलाप भी अति क्रांतिकारी हो गया है। 'भाई-बहन' कहानी को शांति प्रेमचंद की मुलिया (घासवाली) नहीं, जो चरित्र-बल से शासन करना जाने, और सुशीलकुमार में भी चैनसिंह जैसा उतार-चढ़ाव नहीं, पर उसमें मानव-समाज की हृदयहीनता का पूरा निदर्शन हुआ है। 'गंगा' का चरित्र अपनी स्पष्टवादिता में आकर्षक है।

'विनाश के पथ पर' चलनेवाली सुवासिनी के साथ परिवार की नैतिकता का दिवाला तथा सुधारवादी मित्रों की पाशविक फिसलन को लेखक ने बारीकी से देखा है। पैना और नुकीला व्यंग्य इस कहानी की विशेषता है। 'दो दोस्त' में चापलूसी से आत्मा को कुंठित न करनेवाले भाग्यवादी रामकुमार और काम करते करते मर जाना अच्छा समझनेवाले कर्मशील आनंदशंकर का सुंदर मनोवैज्ञानिक विश्लेषण है। 'ईश्वर' कहानी के सभी पात्रों का व्यक्तित्व अपने में पूर्ण है। 'इतना नीच, इतना आवारा, बिल्कुल गांधी निकला' में महात्मा जैसे जनसेवकों के लिये भी घृणा उँडेलनेवाले वैद्यजी जैसे ब्राह्मणों के समाज में अभी बहुत दिनों कमी न होगी, पर अंततोगत्वा उन्हें यही सुनने को मिलेगा—'हमेशा के लिये तुम्हारे घर से ईश्वर रूठ गया।'

'मीना' कहानी में दीनता का हाहाकार और परिवार की यातनाओं की अच्छी झलक है। 'वेश्या' में पन्ना और नीलम के जीवन में मानसिक द्वंद्व लेखक की बड़ी सफलता है। 'पैसे की पहचान' में आज का शिक्षित जीवन सचाई के साथ पैसे की दौड़ में अशिक्षितों से आगे दिखाया गया है। 'रोदन का राग' की नंदरानी का प्रश्न 'क्या अब भी तुम्हें मेरे रोने में राग

नहीं मिलता ?' करुणा का स्वाभाविक उद्रेक करता है। 'पंडितजी' का चरित्र तो अपने छींटों के कारण एक सुंदर व्यंग्य चित्र है।

लेखक की भाषा सरल और सरस है, व्यंग्य ने उसे चटपटा भी बनाया है; यथा—'हिंदी के अत्याधुनिक प्रगतिशील कवियों की भाँति नकी स्वर से', 'चश्मे का जुकामी पानी', 'कमबख्ती की क़ै', 'स्वयं शिशिर नजरुल की साहित्यिक मुर्गी के अंडे हैं'। किंतु 'सुसराल' (ससुराल), 'सील' (सिल), 'फन सीधी कर ली', 'रौशनदार आँखें', 'चरण-कमलों को महनजर रख', 'मेरे देखते ही में वह हुला' जैसे अशुद्ध और अशोभन प्रयोग भी हैं। फिर भी 'कानन' की कहानियाँ मनोरंजक हैं, और लेखक के उज्ज्वल भविष्य का विश्वास दिलाती हैं।

देवता—लेखक, श्री राधाकृष्णप्रसाद; प्रकाशक, पुस्तक-भंडार, लहेरियासराय; पृष्ठ ८२, मूल्य ॥≈)।

आलोच्य पुस्तक में नौ कहानियाँ और छः शब्दचित्र संगृहीत हैं। श्री शिवपूजनसहाय ने 'अभिमत' में 'देवता' के 'चंदन-चर्चित और पुष्प-पूजित' होने की आकांक्षा प्रकट की है। श्री रामवृक्ष बेनीपुरी का मत 'भाषा में रवानी है, गति है; भावों में नौजवानी है, प्रगति है' अवश्य एक संयत प्रोत्साहन है। पुस्तक में किशोरों का ही (तरुणों का भी नहीं) आदर्श प्रायः चित्रित है, यह इसकी नवीनता है।

कहानियों में 'ढुरिया' एक योग्य कृति है। 'अग्रदूत' जैसे शब्दचित्रों में वर्णन-कौशल है। 'एक टक से', 'सामने में' जैसे प्रयोगों के होते हुए भी लेखक की भाषा में सजीवता है। आशा है, सहृदयजन इसका यथेष्ट स्वागत करेंगे।

—हरिमोहनलाल वर्मा, बी० ए०।

रोगविज्ञानम्—लेखक श्री सुरेंद्रकुमार शर्मा; प्रकाशक, के० सुरेंद्र एंड को०, चिड़ावा (जयपुर स्टेट); मूल्य २॥)।

आयुर्वेदाचार्य पं० सुरेंद्रकुमार जी ने यह पुस्तक संस्कृत पद्यमय लिखकर संस्कृतज्ञ वैद्यों का उपकार करने का साहसिक उद्यम किया है। विषय-

संकलन अच्छा है। किंतु व्याकरण और काव्यकला का अभाव शल्यवत् दुःखद है। यदि पंडितजी वैयाकरण-किरातों से भयभीत न होकर किसी विज्ञ मर्मविद् शब्दशास्त्री से पुस्तक का संशोधन कराकर प्रकाशित करते तो यह संकलन बहुत ही उपादेय होता। आशा है, द्वितीय संस्करण में यह संशोधन कर पुस्तक की उपयोगिता बढ़ाएँगे। अन्यथा अथ से इति तक प्रत्येक पद्य में व्याकरण, काव्यकला और छंदोभंग के दोष पुस्तक को अपाठ्य बना देते हैं।

भारत में कुनैन का व्यापार—लेखक और प्रकाशक वही, मूल्य -)।

यह पुस्तिका एक नोटिस के तौर पर लिखी गई है। लेखक ने क्विनाइन की उत्पत्ति विषय की जाँच खूब की है और कुनैन के तरतम को भी समझाने का यत्न किया है। पर विज्ञ समाज पर इस प्रकार के लेखों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। लेखक को उचित है कि 'स्कूल आव ट्रोपिकल मेडिसिन' के अध्यक्ष डा० कर्नल चोपरा के पास अपने आविष्कृत कुनैन की पर्य्याप्त मात्रा भेजकर रोगियों पर परीक्षा कराएँ और उसका फल प्रकाशित करें। साथ ही अपने यहाँ एक चिकित्सालय में टिपिकल मलेरिया के रोगियों को रखकर कुनैन के प्रभाव की परीक्षा जनता के सामने रखें। गुणग्राही जनता उसको अवश्य अपना लेगी और कविराज जी के आविष्कार से संसार का परम उपकार होगा। यह विज्ञान-युग है। वैज्ञानिक रीति का अवलंबन किए बिना काम चल नहीं सकता।

—क० प्रतापसिंह।

चंद्रगुप्त मौर्य और एलेक्ज़ेंडर की भारत में पराजय—लेखक प्रो० हरिश्चंद्र सेठ एम० ए०, पी-एच० डी० (लंदन) एवं श्री कैलाशचंद्र सेठ, साहित्यरत्न; प्रकाशक राज पब्लिशिंग हाउस, बुलंदशहर। पृष्ठ-संख्या १९२, मूल्य १)।

लेखक ने चंद्रगुप्त मौर्य संबंधी ऐतिहासिक सामग्री का नए दृष्टिकोण से अध्ययन किया है। उनकी मुख्य स्थापनाएँ ये हैं—चंद्रगुप्त वीर अश्वक

(=अफगान) नामक क्षत्रिय जाति का नेता था। शशिगुप्त, जिसे अरियन ने अश्वकों का क्षत्रप कहा है, चंद्रगुप्त ही था। वह सिकंदर से मिला था और सिकंदर ने आरनस (Aornos) के दुर्ग के संरक्षण का भार उसे सौंपा था। पश्चात् सिकंदर और पोरस का युद्ध हुआ। पोरस और मुद्राराक्षस का पर्वतेश्वर एक ही व्यक्ति थे। झेलम के युद्ध में यूनानी लेखकों ने जो सिकंदर की विजय-कहानी लिखी है, वह स्वभावतः एकपक्षीय और अतिरंजित थी। अरियन के एक प्रमाण के अनुसार सिकंदर भारतीय युवराज के हाथों घायल हुआ और उसका घोड़ा बुकाफिलस मारा गया (पृ० १३) *। लेखक के अनुसार (पृ० १७) इथिओपिया के प्राचीन ग्रन्थों के आधार पर श्री बैज ने सिकंदर का जीवनचरित लिखते हुए झेलम के युद्ध के वर्णन में लिखा है—'पोरस के विरुद्ध युद्ध में एलेक्ज़ेंडर के अधिकांश घुड़सवार मारे गए। इस कारण उसकी सेना शोक से व्यथित हो दीन स्वर में रोने और चिल्लाने लगी। सैनिकों ने अपने हाथों से हथियारों को फेंक अलेक्ज़ेंडर को त्याग कर शत्रु की ओर जाना चाहा। जब एलेक्ज़ेंडर को, जो स्वयं ही बड़ी विपत्ति में था, यह विदित हुआ तो वह युद्ध को रोकने की आज्ञा देकर इस प्रकार प्रलाप करने लगा—"ओ भारतीय राजा पोरस, मुझे क्षमा कर। मैं तेरे शौर्य और बल को पहचान गया हूँ। अब विपत्ति नहीं सही जाती, मेरा हृदय पूर्ण व्यथित है। इस समय मैं अपने जीवन को अंत करने की इच्छा करता हूँ, परंतु मैं यह नहीं चाहता कि ये समस्त लोग जो मेरे साथ हैं

---

* 'Other writers say that while the troops were landing an encounter took place between the Indians who had come with the son of Poros and Alexander at the head of his cavalry, and that as the son of Poros had come with a superior force Alexander himself was wounded by the Indian prince and that his favourite horse Brukephalos was killed having been wounded, like his master, by the son of Poros.'
Mc Crindle, Invasion by Alexander, p. 101.

बरबाद हों; क्योंकि मैं ही वह व्यक्ति हूँ जो इन्हें यहाँ मौत के मुख में लाया हूँ। यह एक राजा के लिये किसी भी प्रकार उपयुक्त नहीं है कि वह अपने सैनिकों को मृत्यु के मुख में ढकेल दे।" (The Life and Exploits of Alexander from Ethiopic Texts by E. A. W. Badge) यूनानी लेखकों ने झेलम के युद्ध में सिकंदर को विजेता लिखा है, परंतु उन्हीं के कथनानुसार पौरव के साथ जो व्यवहार सिकंदर को करना पड़ा वह आज भी सत्य के दूसरे पक्ष को देखने के लिये हमें विवश करता है। अरियन कहता है कि सिकंदर ने तक्षशिला-नरेश आंभि के हाथ संधि का संदेश भेजा, परंतु यदि देशद्रोही आंभि भाग न आता तो अवश्य ही उसका वध कर दिया गया होता। कर्तिअस के अनुसार सिकंदर का प्यारा घोड़ा घावों से लोहूलुहान होकर इसी युद्ध में धराशायी हुआ। जो तक्षशिला का राजा आंभि पहले जा चुका था, उसी का भाई दूसरी बार संधि के लिये भेजा गया। परंतु पोरस ने ऊँचे स्वर में गरजकर कहा 'यही देशद्रोही तक्षशिलेश का बंधु है' और यह कहकर तत्काल भाले का एक ऐसा भरपूर हाथ मारा कि बरछा उसके कलेजे को छेदकर पीठ की ओर जा निकला, और वह वहीं ढेर हो गया। पौरव से मित्रता स्थापित करने के इस असफल उद्योग के बाद सिकंदर ने अरियन के अनुसार 'पोरस के पास संदेशे पर संदेशे भेजे, और अंत में मेरु (Meroes) को भेजा जो भारतीय था और पोरस का पुराना मित्र था।' इस संधि-प्रणय का जो फल हुआ वह अवश्य हमें सशंक करता है। न केवल राजा पौरव का पुराना राज्य उनके पास अखंड बना रहा, वरन् उससे भी अधिक विस्तृत राज्य की सीमाएँ उसको प्राप्त हुईं।

लेखक ने सिद्ध किया है कि चंद्रगुप्त मौर्य का नंद वंश से कुछ संबंध न था। नीच कुल की एक पत्नी मुरा से मौर्य की उत्पत्ति मुद्राराक्षस के टीकाकार ढुंढिराज (१७१३ ई०) की मनगढ़ंत है जिसका कोई वृत्तांत अठारहवीं सदी से पहले नहीं प्राप्त होता।

'वृषल' शब्द, जिसका प्रयोग मुद्राराक्षस में चंद्रगुप्त के लिये हुआ है, शूद्र का वाची नहीं है। "विजयतां वृषलः', 'वृषलः समाज्ञापयति' आदि स्थलों पर वह राजा का पर्याय मात्र है। एक हस्तलिखित प्रति में, जिसका

उपयोग प्रो० तैलंग ने किया था, 'विजयतां वृषलः' (अंक ३) के स्थान पर 'विजयतां देवः' पाठ है। अंतिम अंक में चाणक्य मौर्य-सम्राट् चंद्रगुप्त का मंत्री राक्षस से मेल कराते समय भी उसे 'वृषल' कहता है जहाँ किसी प्रकार के कुत्सित भाव की गुंजायश ही नहीं है। प्रो० सेठ के अनुसार वास्तविक बात यह है कि अरियन आदि पुराने इतिहासकारों ने चंद्रगुप्त को सदैव "इंडियन बसिलिओ" कहकर पुकारा है। ग्रीक शब्द 'बसिलिओ' (Basileus) का ही संस्कृत रूप वृषल (प्राकृत रूप वसल) था। यूनानी राजाओं के अनेक भारतीय सिक्कों पर राजा का पर्यायवाची ग्रीक 'बसिलिओ' शब्द प्रयुक्त हुआ है। यदि यूनानियों के विजेता चंद्रगुप्त के लिये यह उपाधि प्रयुक्त हुई हो तो आश्चर्य नहीं। चंद्रगुप्त मौर्य शुद्ध क्षत्रिय-वंशी था। बौद्ध-साहित्य में 'मोरिय खत्तियों' का वर्णन है। खान्देश जिले के वाघली स्थान के एक मध्यकालीन शिलालेख में मौर्यों को सूर्यवंशी एवं मांधाता के कुल में उत्पन्न कहा गया है।

चंद्रगुप्त की गांधार देश में उत्पत्ति, चंद्रगुप्त के साम्राज्य के अंतर्गत मध्य एशिया के प्रांत एवं खोतन (चीनी तुर्किस्तान) का प्रदेश, दक्षिण भारत पर चंद्रगुप्त की विजय, एवं आर्य चाणक्य और चंद्रगुप्त की महत्ता का वर्णन करनेवाले अध्याय भी रोचक और विचार-पूर्ण हैं। चंद्रगुप्त प्राचीन भारत का सबसे महान् सम्राट् हुआ है। मैक्रिंडिल और स्मिथ जैसे लेखकों ने मुक्त कंठ से उसकी गणना इतिहास के सबसे महान् और सफल अधिपतियों में की है। आर्य चाणक्य के मस्तिष्क की प्रशंसा में जो भी कहा जाय कम है। राजनीति शास्त्र के विद्वान् लेखक ग्रॉयलर ने 'चांसलर चाणक्य' नामक पुस्तक में अर्थशास्त्र में प्रतिपादित राष्ट्र-प्रबंध की श्रेष्ठता और व्यावहारिकता को स्वीकार करते हुए लिखा है—अर्थशास्त्र एक प्रतिभा-वान् मस्तिष्क की उपज है...और यह ग्रंथ राजनैतिक विचार-धारा की पराकाष्ठा को पहुँचा दिया गया है। अर्थशास्त्र में तंत्र और अभिचार संबंधी जो अंतिम प्रकरण में औपनिषदिक या रहस्य प्रयोग हैं, उनके कर्तृत्व पर लेखक की शंका उचित ही है। सैकड़ों वर्षों बाद भी कामंदक ने चाणक्य को प्रणाम करते हुए लिखा था—

वंशे विशालवंशानामृषीणामिव भूयसाम्।
अप्रतिग्राहकाणां यो बभूव भुवि विश्रुतः ॥
जातवेदा इवार्चिष्मान् वेदान् वेदविदां वरः।
योऽधीतवान् सुचतुरश्चतुरोऽप्येकवेदवत् ॥
नीतिशास्त्रामृतं धीमानर्थशास्त्रमहोदधेः।
समुद्दध्रे नमस्तस्मै विष्णुगुप्ताय वेधसे ॥

'विशाल वंश वाले अनेक त्यागी ऋषियों के कुल में जन्म लेकर जो संसार में प्रसिद्ध हुआ, वेदज्ञों में श्रेष्ठ अग्नि के समान तेजस्वी जिस महात्मा ने चारों वेदों का एक लक्ष्य से अध्ययन किया एवं जिस प्रतिभाशाली पुरुष ने अर्थशास्त्र-रूपी समुद्र को मथकर नीतिशास्त्र रूपी अमृत का उद्धार किया, उस विष्णुगुप्त को प्रणाम है।' ऐसे दो उदात्त मस्तिष्कों के संबंध में नए दृष्टिकोण से हमारा ध्यान खींचने के लिये प्रो० सेठ बधाई के पात्र हैं।

—वासुदेवशरण।

हिंदी शिक्षण-पत्रिका: भेंट अंक—वर्ष ७, अंक १२; संपादक श्री० ताराबहन मोड़क, श्री० काशिनाथ त्रिवेदी और श्री० बंसीधर; वार्षिक मूल्य १), इस अंक का ≈); प्रकाशक श्री० ताराबाई मोड़क, शिक्षण-पत्रिका कार्यालय, हिंदु कालनी, दादर।

आधुनिक मनोवैज्ञानिक शोधों से शिक्षण के क्षेत्र में नया आलोक आया है, नई चेतना जगी है। मानव-व्यक्तित्व के बहुविध विकास की सूझ और समझ से शिक्षण-कर्म में नए, मौलिक प्रयोग हुए हैं और मौलिक सिद्धांत निर्णीत हुए हैं। आधुनिक शिक्षण का उद्देश्य शिष्य अर्थात् बालक का स्वस्थ विकास है। समाज में मनुष्य का स्वस्थ विकास इसका पावन संदेश है। सभी सभ्य देशों में आधुनिक शिक्षण का स्वागत हो रहा है; क्योंकि इसका संदेश सबको प्रिय है। हमारे देश में भी अनेक संस्थाएँ आधुनिक शिक्षण के अनुसार महत्त्वपूर्ण कार्य कर रही हैं। किंतु अभी

साधारण जन की उदासीनता के कारण उन्हें यथेष्ट सफलता नहीं मिली है और इसके संदेश का यथेष्ट प्रचार नहीं हुआ है।

हिंदी शिक्षण-पत्रिका हिंदी में आधुनिक शिक्षण का साधारण जन में प्रचार करनेवाली पहली पत्रिका है और अब भी इसकी विशेषता बनी हुई है। बालशिक्षण के महत्त्वपूर्ण कार्य में हमारे देश में स्वर्गीय आचार्य गिजुभाई बधेका का नाम स्मरणीय रहेगा। उनकी प्रतिभा ने सुयोग्य शिक्षिका श्री० ताराबहन मोड़क के सहयोग से पहले गुजराती में शिक्षण-पत्रिका चलाई। सात वर्ष हुए, श्री० काशिनाथ त्रिवेदी के उत्साह-पूर्ण सहयोग से उसका यह हिंदी रूप निकलने लगा है। आचार्य गिजुभाई ने मातापिताओं और शिक्षकों के लिये आधुनिक शिक्षण के सिद्धांतों और प्रमाणों को निरूपित करने की जो सरल और सरस भाषा-शैली बनाई, वह अब भी इस पत्रिका की विशेषता है। उपादेय और उपयोगी सामग्री के संकलन और उसके सरस उपस्थापन की जैसी मर्यादा इस पत्रिका ने इस सातवें वर्ष की समाप्ति तक निबाही है, उसके लिये इसके संपादक बधाई के पात्र हैं।

पत्रिका का समोदय अंक इसकी एक नई विशेषता है। यह बच्चों की, 'बालदेवता' की भेंट है। वर्ष के अंतिम अंक में बच्चों के लिये मनोरंजक शिक्षणसामग्री उपस्थित करने की यह नई योजना है। यह अंक बालोपयोगी साहित्य का एक सुंदर नमूना है। इसमें काल्पनिक कहानियों, परिचयात्मक गद्यकविताओं, उत्साहपूर्ण तथा विनोदपूर्ण कविताओं एवं वर्णनात्मक चुटकुलों का ३२ पृष्ठों में बहुत सरस संकलन है। इसमें वर्तमान संपादकों के अतिरिक्त स्व० गिजुभाई की भी कुछ सुंदर रचनाएँ हैं। इनमें 'डा० रवींद्रनाथ ठाकुर', 'माता मोंटीसोरी', 'गिजुभाई क्या थे?' कंस मामा,' 'आओ प्यारे बच्चो! आओ!' 'टन् टन् टन् टन्!' तथा 'खटमल' विशेष उल्लेखनीय हैं। इस अंक की सभी रचनाओं में अनुकूल लयात्मकता है, जो बाल-साहित्य में बहुत वांछनीय होती है। इसने इस अंक को बहुत सजीव बनाया है।

आरंभिक 'नैवेद्य' में संपादक ने बच्चों को इस अंक की भेंट करते हुए कहा है—"सात बरस से हम तुम्हारे माता-पिता की और तुम्हारे गुरुजनों

की सेवा कर रहे हैं। सात बरस हुए, हमने हिंदी में, हिंदीवालों के सम्मुख, तुम्हारी हिमायत शुरू की है। हम नहीं जानते कि हमारी हिमायत का क्या असर हुआ है। हम जानना चाहते हैं, पर कोई हमें बताता नहीं। शायद अभी हमारी हिमायत कमजोर है। शायद हमारी पुकार में जितना बल चाहिए, आया नहीं है।" इत्यादि। ऐसी उपयोगी पत्रिका को यह लिखने की आवश्यकता न होनी चाहिए। हम सविश्वास आशा करते हैं कि इसके अगले वर्ष में हिंदी-भाषी माता-पिता और शिक्षक इसका यथेष्ट स्वागत करेंगे और आधुनिक शिक्षण के प्रचार के महत्त्वपूर्ण कार्य में यह उत्तरोत्तर सफल होती रहेगी।

—कृ।

समीक्षार्थ प्राप्त

अभिनवमेघ—लेखक कालिदास; अनुवादक श्री अनिरुद्ध; प्रकाशक स्वतंत्र कार्यालय, झाँसी; मूल्य ॥)।

असमिया साहित्य की रूपरेखा—लेखक श्री विरंचिकुमार बरुआ; प्रकाशक राष्ट्रभाषा-प्रचार समिति, गुवाहाटी; मूल्य ॥)।

आदमी की कीमत—लेखक श्री रामनरेश त्रिपाठी; प्रकाशक हिंदी-मंदिर, प्रयाग; मूल्य =)।

आदर्श नरेश—लेखक और प्रकाशक, श्री झाबरमल्ल शर्मा; ठि० रामदान साहब, प्रतापगढ़, राजपूताना; मूल्य २॥)।

आधुनिक कवि—लेखिका श्री० महादेवी वर्मा; प्रकाशक हिंदी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग; मूल्य १॥)।

आधुनिक हिंदी साहित्य—संपादक श्री सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन; प्रकाशक अभिनव भारती ग्रंथमाला, १७१ ए, हरिसनरोड, कलकत्ता; मूल्य २)।

उन्मुक्त—लेखक श्री सियारामशरण गुप्त; प्रकाशक साहित्य-सदन, चिरगाँव, झाँसी; मूल्य १)।

उर्दू हिंदी प्राइमर—लेखक श्री बिहारीलाल; प्रकाशक यंगमैन ऐंड कंपनी, नई सड़क, दिल्ली; मूल्य -)।

एक सत्यवीर की कथा—लेखक श्री गांधीजी; प्रकाशक सस्ता साहित्य-मंडल, नई दिल्ली; मूल्य -)।

कँटीले तार भाग १-२—लेखक श्री हालकेन, अनुवादक श्री श्यामू संन्यासी; प्रकाशक सरस्वती प्रेस बनारस; मूल्य ॥)।

कजली कौमुदी—संग्रहकर्त्ता श्री कमलनाथ अग्रवाल; प्रकाशक काशी-पेपर स्टोर्स, बुलानाला, बनारस; मूल्य १)।

कथा कहानी और संस्मरण—लेखक श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय; प्रकाशक जैन संघटन सभा, दिल्ली; मूल्य १)।

करुण तरंगिणी—लेखक और प्रकाशक, श्री गांगेय नरोत्तम शास्त्री, २८०, चित्तरंजन एवन्यू, कलकत्ता; मूल्य १)।

कांकरोली का इतिहास—लेखक श्री ब्रजभूषणलाल गोस्वामी; प्रकाशक श्रीविद्याविभाग, कांकरोली; मूल्य ५)।

कार्ल और अन्ना—लेखक श्री लियन हार्डफ्रैंक; अनुवादक श्री देवराज उपाध्याय; प्रकाशक सरस्वती प्रेस, बनारस; मूल्य ॥)।

कोकिला—लेखक श्री रमणलाल बसंतलाल देसाई; अनुवादक श्री गौरीशंकर ओझा; प्रकाशक सरस्वती प्रेस, बनारस; मूल्य १॥)।

गर्जन—लेखक और प्रकाशक, श्री भगवतशरण उपाध्याय, सरस्वती मंदिर, जतनबर; मूल्य १॥)।

गल्पमंजुल—लेखक और प्रकाशक, डा० श्री रघुवरदयाल, ५८, लाज रोड, लाहौर; मूल्य ॥=)।

गृहस्थों को सदुपदेश—लेखक श्री शिवानंद सरस्वती; प्रकाशक हिंदी दिव्य जीवनग्रंथमाला, पो० सिलाव, पटना; अमूल्य।

चंडीचरित्र सटीक—लेखक श्री गुरु गोविंदसिंह; प्रकाशक गुरदित्ता सभा, चौक लोहगढ़, अमृतसर।

चर्खाशाला—लेखक श्री मन्नूलाल शर्मा 'शील'; प्रकाशक डा० गिरिवर-सहाय सक्सेना, स्वल्प विश्राम, बांदा; मूल्य ॥)।

चौबोली—लेखक श्री कन्हैयालाल सहल; प्रकाशक सूर्यकरण पारीक स्मारक साहित्य समिति, बिड़ला कालेज, पिलानी, जयपुर स्टेट; मूल्य ।{ ।

छत्तीसगढ़ी लोकगीतों का परिचय—लेखक श्री श्यामाचरण दुबे; प्रकाशक ज्ञानमंदिर, छत्तीसगढ़, मूल्य ।=) ।

जीवन के गान—लेखक श्री शिवमंगलसिंह 'सुमन'; प्रकाशक प्रदीप कार्यालय, मुरादाबाद; मूल्य १) ।

ज्योति—लेखक श्री अंबिकाप्रसाद; प्रकाशक शारदा प्रेस, नया कटरा, इलाहाबाद; मूल्य १॥) ।

डायरी के कुछ पन्ने—लेखक श्री घनश्यामदास बिड़ला; प्रकाशक सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली; मूल्य ॥।) ।

तत्त्वार्थसूत्र—लेखक श्री आत्मारामजी; प्रकाशक रत्नादेवी जैन, लुधियाना ।

तुलसीचर्चा—लेखक श्री रामदत्त भारद्वाज; प्रकाशक लक्ष्मी प्रेस, कासगंज; मूल्य २) ।

तुलसी समाचार—लेखक और प्रकाशक श्री रामचंद्र वैद्य शास्त्री, सुधा-वर्षक प्रेस, अलीगढ़; मूल्य ।) ।

दीनबंधु को श्रद्धांजलियाँ—लेखक श्री प्रभुदयाल विद्यार्थी; प्रकाशक पुस्तक-भंडार, लहेरियासराय; मूल्य १।) ।

दुर्गावती—लेखक श्री राजेश्वर गुरु; प्रकाशक किरणकुंज, भोपाल; मूल्य ।=) ।

देशी राजाओं का दर्जा—लेखक श्री प्यारेलाल नागर; प्रकाशक सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली; मूल्य ।) ।

द्विवेदी-काव्यमाला—संपादक श्री देवीदत्त शुक्ल, प्रकाशक इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग; मूल्य २) ।

नया हिंदी साहित्य : एक दृष्टि—लेखक श्री प्रकाशचंद्र गुप्त, प्रकाशक सरस्वती प्रेस, बनारस; मूल्य ॥) ।

नेमिदूत—लेखक और प्रकाशक कुँवर श्री हिम्मतसिंह, भेसरोडगढ़, पो० सिगोली, वाया नीमच, ग्वालियर स्टेट; मूल्य ।–) ।

पंचप्रदीप—लेखक श्री कप्तानसिंह 'चंचल'; प्रकाशक एम० बी० जैन ऐंड ब्रदर्स, लश्कर, ग्वालियर; मूल्य ।॥)।

पदार्थविज्ञान और चिकित्सा—लेखक और प्रकाशक श्री अंबिकाचरण कविराज, काशी; मूल्य १)।

प्रलयवीणा—लेखक श्री सुधींद्र; प्रकाशक सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली; मूल्य १)।

प्रेमचंद—लेखक श्री रामबिलास, शर्मा; प्रकाशक सरस्वती प्रेस, बनारस; मूल्य २)।

प्रेमचंद और ग्राम-समस्या—लेखक श्री प्रेमनारायण टंडन; प्रकाशक रामप्रसाद एंड संस, आगरा; मूल्य ॥=)।

प्रेमोपहार—लेखक और प्रकाशक, श्री खुशीराम शर्मा, प्रेमकुटीर, महम, रोहतक; मूल्य ।≡)।

बारक छाया—लेखक श्री बागी रियासती; प्रकाशक प्रदीप-कार्यालय, मुरादाबाद; मूल्य अज्ञात।

बिखरे विचार—लेखक श्री घनश्यामदास बिड़ला; प्रकाशक सस्ता साहित्य-मंडल, नई दिल्ली; मूल्य २)।

भगवान रविदास की सत्यकथा—लेखक श्री रामचरन कुरील; प्रकाशक अछूत-साहित्य-मंडल, ६६ सदर बाजार, कानपुर; मूल्य १।)।

भजन संगीत—लेखक और प्रकाशक, संगीत-विभाग, बिड़ला कालेज, पिलानी; मूल्य ।)।

मनोहर कहानियाँ भाग १-२—लेखक श्री सत्यजीवन वर्मा; प्रकाशक शारदा प्रेस, नया कटरा, इलाहाबाद; मूल्य ॥=)।

महाकवि हरिऔध—लेखक श्री धर्मेंद्र ब्रह्मचारी; प्रकाशक रामनारायनलाल, कटरा रोड, इलाहाबाद; मूल्य १)।

मुक्तिगान—लेखक श्री काशीराम शास्त्री; प्रकाशक आचार्य नरेंद्रनाथ, शिक्षासदन, संतनगर, लाहौर; मूल्य ॥)।

युद्ध गोहार—लेखक और प्रकाशक, ठा० शिवकुमारसिंह, बनारस; मूल्य ।)।

यूरोपीय युद्ध और भारत—लेखक श्री गाँधीजी और श्री जवाहरलाल नेहरू; प्रकाशक सस्ता साहित्य-मंडल, नई दिल्ली; मूल्य १) ।

रामायणरस—लेखक और प्रकाशक श्री जगन्नाथप्रसाद विशारद, एम० ए०, एल्-एल० बी०, वकील, देवरिया; मूल्य ।) ।

लेखरत्नमंजूषा भाग १—लेखक श्री भगवदाचार्य; प्रकाशक महंत श्री रामदास, रामगलोले जी का मंदिर, लहरीपुरा, बड़ौदा; मूल्य १०) ।

विश्वज्ञान—लेखक श्री केदारनाथ गुप्त; प्रकाशक केसरवानी पब्लिशर्स, दारागंज, प्रयाग; मूल्य ॥≈) ।

वैकाली—लेखक श्री जगदंबाप्रसाद 'हितैषी'; प्रकाशक शारदा सेवक सदन, लखनऊ; मूल्य १॥) ।

शारीरशास्त्रांतील पारिभाषिक शब्द—लेखक एन० एस० सहस्त्रबुद्धे प्रकाशक, भिसे ब्रदर्स सीतावाडी, नागपुर; मूल्य अज्ञात ।

शेखर : एक जीवनी—लेखक श्री 'अज्ञेय'; प्रकाशक सरस्वती प्रेस, बनारस; मूल्य ३) ।

शेष स्मृतियाँ—लेखक महाराजकुमार श्री रघुवीरसिंह; प्रकाशक हिंदी-ग्रंथरत्नाकर कार्यालय, बंबई; मूल्य २) ।

षड्दर्शनसमन्वय—लेखक श्री ओमानंदस्वामी; प्रकाशक प्रदीप-कार्यालय, मुरादाबाद; मूल्य ॥) ।

संघर्ष—लेखक और प्रकाशक श्री भगवतशरण उपाध्याय, सरस्वती मंदिर जतनबर, बनारस; मूल्य १॥) ।

संसार का भविष्य—लेखक श्री जगदंबाप्रसाद जौहरी; प्रकाशिका शान्तोदेवी जौहरी, $\frac{1}{1}\frac{0}{0}\frac{3}{0}$ श्रीनगर, कानपुर; मूल्य ।) ।

संसार की शासन-प्रणालियाँ और आज का यूरोपीय युद्ध—लेखक श्री रामचंद्र वर्मा; प्रकाशक सस्ता साहित्य-मंडल, नई दिल्ली; मूल्य १॥) ।

सवेरा—लेखक और प्रकाशक श्री भगवतशरण उपाध्याय; सरस्वती-मंदिर जतनबर, बनारस; मूल्य १॥) ।

सात इनकलाबी इतवार, भाग १-३—लेखक श्री रेमन सेंडर, अनुवादक श्री नारायणस्वरूप माथुर; प्रकाशक सरस्वती प्रेस, बनारस; मूल्य १॥) ।

सेवाधर्म और सेवा मार्ग—लेखक श्री श्रीकृष्णदत्त पालीवाल; प्रकाशक सस्ता साहित्य-मंडल, नई दिल्ली; मूल्य १)।

सोने की माया—लेखक श्री किशोरलाल घ मशरूवाला ; प्रकाशक सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली; मूल्य =)।

स्त्रियों के व्रत, त्यौहार और कथाएँ—लेखक श्री रामदत्त भारद्वाज; प्रकाशक लक्ष्मी प्रेस, कासगंज; मूल्य ॥)।

स्नेहयज्ञ, भाग १-२—लेखक श्री रमणलाल बसंतलाल देसाई; अनुवादक श्री श्यामू संन्यासी; प्रकाशक सरस्वती प्रेस, बनारस; मूल्य १)।

हाथ की भाषा—लेखक और प्रकाशक श्री बलदेवप्रसाद शुक्ल; २४ बहादुरगंज, इलाहाबाद; मूल्य ॥)।

हिंदियों की राष्ट्रभाषा केवल हिंदी है—लेखक और प्रकाशक पंडित तुलसीदत्त 'शैदा', लाहौर; अमूल्य।

हिंदी खिलौना—निर्माता और प्रकाशक, श्री शेरसिंह, बिजनौर; मूल्य २)।

हिंदी स्वयं शिक्षक—लेखक श्री बिहारीलाल; प्रकाशक यंगमैन ऐंड कंपनी, नई सड़क, दिल्ली; मूल्य -)।

विविध

पारिभाषिक शब्द-संग्रह

हमारे वाङ्मय की व्यवस्थित उन्नति के लिये पारिभाषिक शब्दों का निश्चय बहुत आवश्यक कार्य है। पिछले वर्ष इसी स्कंध में 'भारत की प्रादेशिक भाषाओं के लिये समान वैज्ञानिक शब्दावली' के विषय पर लिखते हुए हमने निवेदन किया था कि "आधुनिक भारतीय भाषाओं के लिये समान वैज्ञानिक शब्दावली का निश्चय राष्ट्रीय महत्त्व का कार्य है। इसका संपादन भारतीय दृष्टि से व्यापक और गंभीर विचार के द्वारा होना चाहिए। यह कार्य देश के कितने ही अधिकारी व्यक्तियों और संस्थाओं ने, जब से भारत की आधुनिक भाषाओं में वैज्ञानिक तथा शास्त्रीय रचनाएँ होने लगीं तब से ही, किया है। उन्होंने प्रथमतः अपनी अपनी प्रादेशिक भाषाओं के लिये ही शब्दावलियाँ निश्चित की हैं, परंतु भारतीय दृष्टि रखने के कारण वे उन्हें शेष भारतीय भाषाओं के लिये भी बहुत कुछ समान रूप से उपयोगी बना सके हैं। क्योंकि भारतीय भाषाओं में प्रादेशिक विभिन्नताएँ होते हुए भी एक मौलिक समानता है। किंतु सम्मिलित और संघटित कार्य न होने के कारण उन शब्दावलियों का अखिलभारतीय महत्त्व ही रहा है, उनसे अखिलभारतीय व्यवहार का निश्चय नहीं हो सका है।" भारत-सरकार की केंद्रीय परामर्शदात्री शिक्षापरिषद् ने मद्रास में हुई अपनी छठी बैठक में इस विषय में जो मनमाना निर्णय किया है, वह हमारी प्रादेशिक भाषाओं के विकास एवं देश में वैज्ञानिक तथा शास्त्रीय ज्ञान के प्रसार के लिये वैसा ही घातक है जैसा कि उक्त टिप्पणी लिखते समय सरकारी परिषद् की नीति देखकर हमने उसकी कल्पना की थी। उस निर्णय का देश भर में विरोध हो रहा है और वह विरोध प्रबलता से होना चाहिए।

परंतु सम्मिलित और संघटित रूप से भारतीय वाङ्मय की व्यवस्थित उन्नति के लिये समान पारिभाषिक शब्दावली का निश्चय हमारा बहुत आवश्यक कर्तव्य है। इसके लिये प्रथम कार्य यह है कि हमारे विभिन्न प्रदेशों में जो पारिभाषिक शब्दावलियाँ बनाई गई हैं उनका एकत्र शब्दानुक्रम से संग्रह किया जाय। इस पारिभाषिक शब्द-संग्रह से इस संबंध में अब तक के प्रयत्नों का महत्त्वपूर्ण लेखा तैयार हो जायगा और यह निश्चयात्मक विचार का आवश्यक आधार होगा। इस प्राथमिक कार्य के अनंतर दूसरा कार्य यह है कि विभिन्न प्रदेशों के प्रतिनिधि अधिकारी विद्वानों की एक परिषद् संघटित की जाय जो भारतीय भाषाओं के लिये समान पारिभाषिक शब्दावली के संबंध में यथोचित नीति निर्धारित कर उसका निश्चय करे।

उपर्युक्त विचार को नागरी प्रचारिणी सभा के संवत् २००० में होनेवाले अर्धशताब्दी-महोत्सव के संबंध की एक योजना के रूप में हमने सभा की प्रबंध-समिति में प्रस्तावित किया था। उसमें हमने यह रखा था कि सभा उक्त महोत्सव के अवसर पर यह पारिभाषिक शब्द-संग्रह तैयार कराए और जिन शब्दों को वह उपयुक्त समझे, उन्हें अपना मत संकेतित करने के लिये कुछ मोटे टाइप में रखाए। महोत्सव में वह विभिन्न प्रदेशों के प्रतिनिधि अधिकारी विद्वानों की उक्त परिषद् आमंत्रित करे जो यथोक्त रूप से कार्य संपादन करे। सभा की प्रबंध-समिति ने इस प्रस्ताव को स्वीकृत कर लिया है। इस प्रकार सभा ने कर्तव्य के महत्त्व का ध्यान कर इस दोहरे दायित्व का संकल्प कर लिया है। यह इस विश्वास पर ही कि उसे सब ओर से इस गुरु दायित्व के निर्वाह में यथेष्ट साहाय्य प्राप्त होगा। देश के राष्ट्राभिमानी विद्वानों और विद्वत्संस्थाओं का ध्यान हम बहुत आशा से इस ओर आकृष्ट करते हैं।

प्रादेशिक वाङ्मयों के पचास वर्षों का इतिहास

नागरी प्रचारिणी सभा ने संवत् २००० में होनेवाले अपने अर्द्धशताब्दीमहोत्सव के अवसर पर अपने पचास वर्षों के कार्य-विवरण के साथ

हिन्दी-वाङ्मय के गत पचास वर्षों की बहुविध प्रगति का इतिहास प्रस्तुत करने का निश्चय किया है। हिंदी-वाङ्मय का प्रादेशिक महत्त्व के साथ सार्वदेशिक महत्त्व भी है। अतः इसके गत पचास वर्षों की बहुविध प्रगति के इतिहास के साथ अन्य प्रादेशिक वाङ्मयों के गत पचास वर्षों की प्रगति का इतिहास भी प्रस्तुत हो तो यह बहुत उपयुक्त हो। ऐसे इतिहास की आंतरिक समरूपता के लिये सभा पहले इसकी एक निश्चित रूपरेखा प्रस्तुत करे। और तब प्रत्येक प्रादेशिक वाङ्मय का इतिहास उसके किसी अधिकारी विद्वान् से लिखाया जाय। इस प्रकार हिंदी-वाङ्मय के गत पचास वर्षों के इतिहास के साथ अन्य प्रादेशिक वाङ्मयों का भी उतने काल का इतिहास संपादित हो।

इस विचार को पूर्वोक्त विचार के समान सभा की प्रबंध-समिति में हमने प्रस्तावित किया था। समिति ने वैसे ही उत्साह के साथ इसे स्वीकृत कर लिया है। परंतु इस संबंध में भी इस विश्वास पर ही उसने यह निश्चय किया है कि इस महत्त्व-पूर्ण कार्य के संपादन में उसे सब ओर से यथेष्ट साहाय्य प्राप्त होगा। बहुत आशा से ही हम इस ओर भी देश के विद्वानों तथा विद्वत्सभाओं का ध्यान आकृष्ट करते हैं।

'सुर्जनचरित' महाकाव्य

पिछले वर्ष इसी स्कंध में 'पृथ्वीराज रासो संबंधी शोध' के विषय पर लिखते हुए हमने श्री दशरथ शर्मा के लेखों में निर्दिष्ट १६वीं शती (ई०) के संस्कृत महाकाव्य सुर्जनचरित का उल्लेख करके उसके आगे प्रश्न-चिह्न रखा था। हमें हर्ष है कि उस प्रश्न के फलस्वरूप हमें श्री शर्मा से एक उपादेय परिचयात्मक लेख प्राप्त हुआ है और उसे हम इस अंक में प्रकाशित कर रहे हैं। इस हस्तलिखित रूप में ही वर्तमान महत्त्वपूर्ण महाकाव्य के विषय विश्लेषण और सारांश के प्रकाशित हो जाने से पृथ्वीराज-रासो संबंधी विचार में विशेष सुविधा होगी।

'भारतीय समाचार'

दिल्ली से भारत-सरकार के प्रिंसिपल इन्फार्मेशन आफिसर द्वारा प्रकाशित पाक्षिक समाचारपत्र 'इंडियन इन्फार्मेशन' का हिंदी संस्करण 'भारतीय समाचार' के नाम से १५ मई १९४० से निकल रहा है। इसके ३२ अंक हमने देखे हैं। हम यह सहर्ष लिखते हैं कि इसकी भाषा बेढंगी 'हिंदुस्तानी' नहीं, अच्छी हिंदी है। इसकी शैली विषयानुकूल होती है और नए शब्दों के ग्रहण की इसकी नीति भी हिंदी संस्कार के अनुकूल होती है। अपनी प्रशस्य भाषा-नीति के लिये इसके संपादक साधुवाद के पात्र हैं।

'भारतीय समाचार' अन्य सरकारी भाषा प्रयोक्ताओं के लिये एक अच्छा नमूना है। क्या भारतीय रेडियो विभाग की 'हिंदुस्तानी' के विधाता अपने घर के ही इस प्रकाशन से शिक्षा नहीं ले सकते?

—कृ।

स्वर्गीय द्विवेदी जी के कागद-पत्तर

पत्रिका वर्ष ४४, अंक ३, पृष्ठ ३३५-३७ में सभा की ओर से 'स्वर्गीय द्विवेदी जी का लिफाफा' शीर्षक के अंतर्गत सभा के तत्कालीन प्रधान मंत्री ने तथा राय बहादुर बाबू श्यामसुंदरदास जी ने यह स्पष्ट कर दिया था कि सभा के कार्यालय में द्विवेदी जी का ऐसा कोई मुहरबंद लिफाफा नहीं है जो खोला जाने को हो और जिससे किसी रहस्य का उद्घाटन होने की आशा हो। जो बंद लिफाफा द्विवेदी जी ने अभिनंदनोत्सव के अनंतर सभा के तत्कालीन सभापति को दिया था उसमें सभा के नौकरों के लिये २००) रुपयों की भेंट थी। जिस सामग्री को उन्होंने 'ताले में बंद' रखने का और उनके जीवनकाल में न खोलने का आदेश किया था वह थे उनके तीन बंडल जिनमें उनके नाम भेजे गए निजी पत्रों का संग्रह मिला है।

इसका विवरण उपर्युक्त स्पष्टीकरण में दिया जा चुका है। उस बंद लिफाफे और इन 'ताले में बंद' रखे गए पत्रों के बंडलों को कुछ लोगों ने भ्रमवश अभिन्न मान रखा है। उक्त बंडलों में प्राप्त पत्रों की पूरी सूची अब सभा ने तैयार करा ली है। पत्रों की संख्या २८०१ है और ये सन् १८९२ से लेकर सन् १९२८ तक के हैं। मैं समझता हूँ कि सन् १९२०-२३ के कुछ पत्र द्विवेदी जी ने सभा के संग्रह में रखने को नहीं भेजे हैं। बात यह है कि मैंने तथा मेरे कुछ साथियों ने, इंडियन प्रेस प्रयाग में रहते समय, सन् १९२१ के लगभग द्विवेदी जी को कुछ पत्र लिखे थे। उनमें से एक भी मुझे सभा के संग्रह में नहीं मिला। जान पड़ता है कि वे पत्र या तो दौलतपुर में द्विवेदी जी के घर पर रक्षित होंगे या फिर किसी मित्र ने उन पर अधिकार कर लिया होगा।

सभा में रक्षित इन पत्रों पर प्राप्त होने की तारीख और उत्तर का सूक्ष्मांश पेंसिल से द्विवेदी जी के हाथ का लिखा हुआ है। जो पत्र बहुत महत्त्व के समझे गए हैं उनके उत्तर की प्रतिलिपि भी साथ में है, पर ऐसे पत्र हैं बहुत स्वल्प। इन पत्रों की सूची ब्योरेवार छाप देने का आग्रह एक-आध सज्जन ने किया था। किंतु सभा ने इस कार्य में अपने को समर्थ नहीं पाया। आग्रह करनेवालों का कहना था कि सभा उल्लिखित पत्रों का प्रकाशन न करना चाहे तो वे स्वयं छपाई का खर्च देंगे। इस पर उनसे अनुरोध किया गया कि प्रकाशन का विचार करने से प्रथम आप एक बार काशी पधारकर इनको देख तो लीजिए। इसका ठीक उत्तर न मिलने पर सभा ने आगरे से प्रकाशमान साहित्यिक मासिक पत्र 'साहित्य-संदेश' (अक्तूबर १९४१, पृष्ठ ८९) में अपनी ओर से स्पष्टीकरण कर दिया जिससे किसी को किसी प्रकार का भ्रम न हो।

यदि ये पत्र द्विवेदी जी ने दूसरों को लिखे होते तो इनके प्रकाशन से लाभ की आशा भी की जाती, किंतु ये तो दूसरे लोगों ने द्विवेदी जी को लिखे हैं, अतः इनके प्रकाशन में अर्थ और समय लगाकर किस लाभ की आशा की जाय? हाँ, यदि कोई द्विवेदी जी का विशेष रूप से अध्ययन

करना चाहे अथवा उनका विस्तृत जीवनचरित लिखना चाहे तो उसके लिये यह सामग्री लाभप्रद हो सकती है। सभा की समझ में सर्वसाधारण को इस सामग्री के प्रकाशन से लाभ होने की आशा नहीं।

सन् १९२८ से लेकर द्विवेदी जी के तिरोहित होने तक के पत्र द्विवेदी जी के ग्राम दौलतपुर में रक्षित होंगे। बाबू श्यामसुंदरदास जी को द्विवेदी जी ने ११-११-२३ को जुही कलाँ, कानपुर से एक कार्ड में लिखा था—"...पत्र-व्यवहार अब पीछे दूँगा। अभी तो शायद पुस्तकें भी न दी जा सकें।..." द्विवेदी जी के पास आए हुए समस्त पत्रों का संग्रह यदि किसी एक ही सार्वजनिक संस्था में सुरक्षित रहता तो अच्छा होता।

दिवंगत आचार्य द्विवेदीजी के महत्त्वपूर्ण पत्र सभा के कार्यालय में सुरक्षित हैं। उनमें से दो पत्रों का अभीष्ट अंश और १४ नवंबर सन् १९२३ का एक पत्र यहाँ उद्धृत किया जाता है जिससे प्रकट होगा कि द्विवेदी जी को सभा पर कितना स्नेहपूर्ण विश्वास था और अपने संग्रह पर उनको कितनी ममता थी।

जुही, कानपुर
१४. ११. २३

मेरे ज़िले रायबरेली में बेली पाठशाला का एक पुस्तकालय है। कई तअल्लुकेदार पीछे पड़े रहे। मैंने उनको पुस्तकें नहीं दीं। यहाँ कानपुर में छोटेलाल गयाप्रसाद ट्रस्ट है। कोई १½ लाख की इमारत बनी है। बृहत् पुस्तकालय उसमें शीघ्र ही खुलेगा। अनेक बड़े बड़े आदमी चाहते थे कि मैं वहीं अपना संग्रह रख दूँ। मैंने नहीं माना। बहुत से लोग नाराज़ हो गये। सभा का मेरा तअल्लुक़ पुराना है उसी को मैंने पात्र समझा। वह चाहे रक्खे चाहे नष्ट कर दे। मैं बाँट नहीं देना चाहता; पर राय कृष्णदास का प्रणयभंग भी नहीं करना चाहता। उन्होंने बहुत पहले से कुछ पुस्तकें माँग रक्खी हैं। एक Archæological पुस्तक मैंने विवश होकर परसाल भेजी भी थी। उन्हें मैं Director General की Annual Reports कुछ भेज दूँगा। पर अभी मैं उनको पास ही रक्खूँगा। दो तीन यहाँ हैं, चार पाँच गाँव

पर। मेरे पास भी इधर ही कुछ सालों से आने लगी हैं, गवर्नमेंट आफ़ इंडिया से बहुत लड़ने पर।

यहाँ का संग्रह कुछ अच्छा नहीं, अधिकांश रद्दी है। पर जो है, हाज़िर है। बहुत पुस्तकों के पुट्ठे टूट गये हैं। बहुतों को चूहे खा गये हैं। आप चाहें तो मरम्मत करा लीजिएगा। अब तक ७ बकस भरे गये हैं। अभी तीन चार आलमारियाँ और भरी पड़ी हैं। हस्तलिखित सामग्री तो सभी पड़ी है। यह सब अब मेरे लौटने पर उठवाइएगा। मैं परसों चला जाऊँगा जो जाने लायक़ हुआ। सूची ठीक ठीक नहीं बनी। हिंदी में मराठी, और संस्कृत में हिंदी आदि किताबें मिल गई हैं। किसी बहुज्ञ से किताबें देख देखकर फिर बनवाइएगा और एक कापी मुझे भी भेजिएगा। हिंदी-संस्कृत में हो सके तो विषय के अनुसार पुस्तकें अलग कर दीजिएगा। पं० गौरीशंकर ओझाजी (की) पुस्तक प्राचीन लिपिमाला कहीं थी। सूची में नहीं मिलती। देख लीजिएगा, वहाँ पहुँचती है या नहीं। पुस्तकें यहाँ बाहर बरांडे में रात को पड़ी रहती रही हैं। अब तक ११६७ पुस्तकें निकाली गई हैं। उनमें से सौ डेढ़ सौ तो मासिक पुस्तकों की फाइलें ही होंगी। हिसाब—हिंदी ६५८, अँगरेज़ी २८१, संस्कृत ८६, उर्दू ५९, बँगला ५१, मराठी २४, गुजराती ८। शायद सौ-पचास और निकाली जा सकें। जो रेलवाले माल लेंगे तो कल रवाना हो जायगा। नहीं बा० सहाय को ठहरना पड़ेगा। उन्हें वहाँ बुलाकर उनसे पुस्तकें सँभाल लीजिएगा।

दौलतपुर का संग्रह इससे अच्छा है। पुस्तकें सुंदर सजाने लायक़ हैं। उन्हें अभी वहीं रहने दीजिए। मुझ अनाथ की नाथ वही हैं। वहाँ यदि किसी से प्रेम है तो उन्हीं से है। उन्हीं को देखकर किसी तरह काल-यापन कर देता हूँ। कुछ काम भी निकलता है। पुराणादि पढ़ता हूँ। विरक्ति कुछ और बढ़ने पर उन्हें भी भेज दूँगा। वसीयतनामे में लिख भी दिया है कि संग्रह किसी सर्वसाधारण संस्था को दे दिया जाय। अब आप ही का हक़ है, और कोई न पावेगा।

आपका
म० प्र० द्विवेदी

७-११-२३ को बाबू श्यामसुंदरदास जी को लिखे एक गोपनीय पत्र में द्विवेदी जी का यह वाक्य इस संबंध में महत्त्व का है—"संग्रह बँट जाना अच्छा नहीं।" ९-११-२४ को उन्होंने उक्त स्थान से बाबू साहब को लिखा था—"अपने वसीयतनामे में मैंने बची हुई पुस्तकें भी सभा को दे डालने की बात लिख दी है—कुछ थोड़ी सी छोड़कर।* उतने अंश की नकल मैं किसी दिन सभा को भेज दूँगा।"

—ल० पांडेय।

---

* आचार्य द्विवेदीजी का देहावसान होने के अनंतर उनके भानजे श्री कमलाकिशोर जी को इसका ध्यान दिलाया गया था। आशा है, वे अपने मामाजी की इस इच्छा को पूर्ण करने में पश्चात्पद न होंगे। सभा को अभी तक द्विवेदी जी का वसीयतनामा देखने को नहीं मिला है। यदि वह सामयिक पत्रों में प्रकाशित करा दिया जाय तो उत्तम हो। —ल० पां०।

सभा की प्रगति

पुस्तकालय

हिंदी के उदार लेखक और प्रकाशक पूर्ववत् कृपा कर पुस्तकालय के लिये पुस्तकें और पत्र-पत्रिकाएँ भेजते रहे। श्रावण के अंत में पुस्तकालय में हिंदी की मुद्रित पुस्तकों की संख्या १६०५७ थी, कार्तिक के अंत में वह १६१८६ रही। जिल्दबंदी के सामान की महँगी के कारण अब मासिक पत्रिकाओं की फाइलों पर दफ्ती की जिल्दें न लगाकर उनपर सादी जिल्दें लगाने का प्रबंध किया गया है। हिंदी की मुद्रित पुस्तकों की सूची तो तैयार ही हो चुकी है, अब हस्तलिखित पुस्तकों की सूची बनाने में हाथ लगा दिया गया है। पुस्तकालय के जिन सहायकों के नाम दो वर्ष या अधिक का चंदा बाकी पड़ गया था उनके नाम नियमानुसार सहायकों की सूची से खेदपूर्वक अलग कर दिए गए और उनकी अमानत की रकमों का जमाखर्च कर लिया गया।

खोज विभाग

मथुरा और इटावा जिलों में हस्तलिखित पुस्तकों की खोज का कार्य अब बंद कर दिया गया है और इस समय श्री दौलतराम जुयाल बलिया जिले में तथा श्री महेशचंद्र गर्ग इलाहाबाद में खोज का काम कर रहे हैं।

प्रबंध समिति के ८ भाद्रपद १९९८ के अधिवेशन में पं० रामबहोरी शुक्ल एम० ए०, बी० टी० खोज विभाग के संयुक्त निरीक्षक चुने गए।

संकेत लिपि विद्यालय

काशी नगर में संकेत लिपि का एक और विद्यालय खुल जाने के कारण सभा के विद्यालय का कार्य कुछ दिनों के लिये स्थगित कर दिया गया

है। सभा ने अपने विद्यालय के पुराने छात्र श्री रामदुलारे सिंह को दिल्ली में सभा के संकेत लिपि विद्यालय की शाखा खोलने की अनुमति दे दी है।

प्रकाशन

कागज के घोर दुर्भिक्ष के कारण सभा को अपने प्रकाशन-कार्य में बड़ी कठिनाई पड़ रही है, अतः नई पुस्तकों का प्रकाशन इधर नहीं हो सका है। तर्कशास्त्र भाग २ का प्रतिमुद्रण हो रहा है। 'गोस्वामी तुलसीदास' और 'हिंदी-साहित्य का इतिहास' का प्रतिमुद्रण शीघ्र ही करने का निश्चय हो चुका है।

बंबई की श्री रामविलास पोद्दार स्मारक समिति ने श्री रामविलास पोद्दार स्मारक ग्रंथमाला के प्रकाशन के लिये अपनी प्रकाशित पुस्तकों का स्टाक और २००) प्रति वर्ष दस वर्षों तक सभा को देना स्वीकार किया है। इस माला का प्रकाशन-कार्य सुविधा के अनुसार शीघ्र आरंभ होगा।

स्थायी कोश

कार्तिक के अंत में सभा के स्थायी कोष में जो धन जमा रहा उसका ब्योरा निम्नलिखित है—

१६०००) के स्टाक सर्टिफिकेट ट्रेजरर चैरिटेबुल एंडाउमेंट्स, युक्तप्रांत के पास

६५५।=) बनारस बंक में

६२९≡)८ पोस्ट आफिस सेविंग बंक में

२१२॥)७ इलाहाबाद बंक में

१७४९७=)।

सभा के आरंभ से संवत् १९९७ के अंत तक की वर्षक्रम से सभासदों की संख्या

संवत्	सदस्य संख्या	संवत्	सदस्य संख्या
१९५०	८२	१९७४	१००७
१	१४५	५	८८२
२	१४७	६	६९१
३	२०१	७	५७७
४	२२२	८	५५८
५	२४७	९	५४२
६	२७०	१९८०	५१६
७	२९२	१	५४०
८	३९१	२	५७४
९	५४८	३	५४६
१९६०	५७६	४	५७९
१	६६२	५	५७९
२	६७७	६	५७४
३	६८१	७	६०९
४	७०४	८	५३४
५	७४२	९	५४८
६	७९६	१९९०	५२६
७	९९०	१	५३८
८	१३२२	२	५५२
९	१३४३	३	५१७
१९७०	१३६७	४	६०२
१	१२०१	५	६६५
२	१२२८	६	८०६
३	१०५२	१९९७	१०३७

१ भाद्रपद से ३० कार्तिक १९९८ तक सभा को २५) या अधिक दान देनेवाले सज्जनों की नामावली

प्राप्ति-तिथि	दाता का नाम	धन	प्रयोजन
२ भाद्रपद ९८ २६ कार्तिक "	श्री प्रांतीय सरकार	५००)	पुस्तकालय
३ भाद्रपद ९८ ४ " " २५ कार्तिक "	श्री प्रांतीय सरकार	१५००)	हिंदी पुस्तकों की खोज
५ भाद्रपद ९८	श्री लाला बनवारीलालजी, कोठी, श्री भानामल गुलजारीलाल, दिल्ली	५०)	नागरी-प्रचार
६ " "	श्री सेठ नंदलाल भुवालका, कलकत्ता	१००) १००)	स्थायी कोष भवननिर्माण
२३ " "	श्री बैजनाथ बाम्रे, बी० ए०, एल० टी०, फैजाबाद	१००)	स्थायी कोष
२४ भाद्रपद ९८	श्री प्यारेलाल गर्ग, गोरखपुर	१००)	डा० महेंदुलाल गर्ग वि० ग्रं०
३१ " "	श्री रामभरोसे सेठ, काशी	१००)	स्थायी कोष
९ आश्विन	श्री गयाप्रसाद ट्रस्ट, कानपुर	३६)	साधारण व्यय
२१ " "	श्री हीरानंद शास्त्री, बड़ोदा	१००)	स्थायी कोष
३१ " "	श्री अद्वैतप्रसाद शाह, काशी	१००)	नागरी-प्रचार
७ " "	श्री प्रो० अमरनाथ झा, प्रयाग	१००)	कलाभवन
१० कार्तिक ९८	श्री मालचंद शर्मा, बीकानेर	१०१)	स्थायी कोष
२६ " "	श्री श्रीधर पंत, शास्त्री, एम० ए०, बरेली	१००)	"
२६ " "	श्री कृष्णचंद्र, सिविल जज, इलाहाबाद	१००)	"

टि०—जिन सज्जनों के चंदे किस्त से आते हैं, उनके नाम पूरी रकम प्राप्त हो जाने पर प्रकाशित किए जायँगे।

सभा की नई प्रकाशित पुस्तकें

भारतीय मूर्तिकला

(लेखक—श्री राय कृष्णदास)

इस पुस्तक में मौर्य से पूर्व वर्षों के समय से लेकर आज तक की भारतीय मूर्तिकला का वर्णन बड़ी सरल भाषा में किया गया है। साथ ही इस कला के सौंदर्य की विशेषताएँ एवं तात्त्विक व्याख्या भी दी गई है। अपने ढंग की हिंदी ही में नहीं समस्त भारतीय भाषाओं में यह पहली पुस्तक है। पृष्ठ-संख्या २२५ + १२, ३९ चित्र तथा मैप के साथ अनेक रेखा-आकृतियाँ। मूल्य ३), विशिष्ट संस्करण ४)।